ब्रह्म सत्यं जगत् सत्यं अंशो जीवो हि नापरः

अखण्ड भूमण्डलाचार्य जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रधान पीठ, श्रीनाथद्वारा

पुष्टिमार्ग

त्रैमासिक पत्रिका

जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रधान पीठाधीश्वर
आचार्यवर्य्य गोस्वामी तिलकायित
श्री १०८ श्रीराकेशजी (श्रीइन्द्रदमनजी)
महाराजश्री की आज्ञा से–

प्रकाशक

अजय कुमार शुक्ला

मुख्य निष्पादन अधिकारी

मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा (राज.)

31 दिसम्बर 10
(वि.सं. २०६७)

दयाशंकर पालीवाल
सम्पादक

जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रधान पीठाधीश्वर आचार्यवर्य्य गोस्वामी तिलकायित श्री १०८ श्रीराकेशजी (श्रीइन्द्रदमनजी) महाराजश्री की आज्ञा से सम्पादक दयाशंकर पालीवाल द्वारा सम्पादित एवं स्वत्वाधिकारी श्रीमन्दिर मण्डल, नाथद्वारा के मुख्य निष्पादन अधिकारी द्वारा प्रकाशित तथा **श्रीसुदर्शन यन्त्रालय** मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा द्वारा मुद्रित।

संरक्षक–मण्डल

अध्यक्ष

गो. ति. श्री १०८ श्रीराकेशजी (श्रीइन्द्रदमनजी) महाराजश्री
चि. गो. श्रीभूपेशकुमारजी (श्रीविशाल बावा)

प्रकाशकः–

अजय कुमार शुक्ला

मुख्य निष्पादन अधिकारी मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा

दयाशंकर पालीवाल

सम्पादक

जयदेव गुर्जर गौड़
परामर्शदाता

डा. देवर्षि कलानाथ शास्त्री
परामर्शदाता

न्यौछावर १५/– *अंक– 4* *प्रति १०००*

नाथद्वारा मन्दिर मण्डल के मुख्य निष्पादन अधिकारी नाथद्वारा द्वारा प्रकाशित एवं श्रीसुदर्शन यन्त्रालय मन्दिर मण्डल द्वारा मुद्रित
R.N.I.No. RAJHIN-/1999-3432

प्राप्ति स्थान
श्रीगोवर्धन पुस्तकालय, धोली पटिया श्रीनाथजी मन्दिर
नाथद्वारा (राजस्थान) 313301

कृपया सदस्यता शुल्क वार्षिक–60), पांच वर्षिय–300) और आजीवन–800) भिजाकर शीघ्र सदस्य बनें और अन्य लोगों को भी बनाने का पवित्र कार्य करें। –सम्पादक
''जय श्रीकृष्ण''

सम्पादकीय–

श्रीकृष्ण कन्हैया के ह्रदय में स्थित श्रीराधिका के स्त्रीभावात्मक परमानन्द स्वरूप और श्रीराधिका के ह्रदय में स्थित श्रीकृष्ण कन्हैया के पुंभावात्मक आनन्द स्वरूप का जब परस्पर मधुर–मिलन हुआ तो एक मधुराकृति ''कृष्णास्य'' स्वरूप श्रीवल्लभ का इल्लमागारूजी के गर्भ से प्राकट्य हुआ। पंढरपुर के प्रभु– श्रीविट्ठल (विठोबा) के आदेश से श्रीवल्लभ ने गृहस्थ–धर्म में प्रवेश किया और वंश विस्तार द्वारा स्वोद्भावित पुष्टिमार्ग का इस भूतल पर प्रचार प्रसार किया। स्वयं श्रीवल्लभ ही अपने पुत्र रूप में प्रकट हुए। पिता ही पुत्र रूप से प्रकट होता है "आत्मा वै पुत्र–नामासि'। श्रीवल्लभ ही स्वयं ही पुत्र, तत्पुत्र, पौत्र, प्रपौत्रादि वंशजों के रूप में, अस्रवलित गति से पुनः पुनः अवतीर्ण होकर ब्रह्म–सम्बन्ध विधि से स्वसेव्य की सेवा द्वारा सेवामार्ग (प्रेम लक्षणा भक्ति) पुष्टिमार्ग के प्रचार–प्रचार के व्रत में सेवारत हैं। श्रीवल्लभ–वंश, वल्लभरूप है। पुष्टि सम्प्रदाय में श्रीवल्लभकुल ''महा अलौकिक अग्निकुल'' है और ''गुरू'' पद स्थापित है। भक्तोद्धार एवं सेवा मार्ग की निरंतरता वल्लभकुल की प्रयोजन–विशिष्टता है।

अग्निकुल नन्दन, भक्ति–रहस्य–मर्मज्ञ, तत्त्वदर्शी, महान् दार्शनिक पूज्यपाद गो.ति. श्रीगोविन्दलालजी महाराज ने "श्रीमद् भागवत सुधारस'' वचनामृत में श्रीमद् भागवत् को वेदादिवाणी का विस्तार, सर्वोपयोगी, सर्वोपारक बताकर श्रवण मात्र से भगवत् सानिध्य का बोध कराया है और श्रीसुबोधिनी सुधारस का अस्वादन करते रहना प्रत्येक वैष्णव के लिए आवश्यक बताया है। पुष्टिमार्ग के महान् विद्वान डा. राकेश तैलंग ने अपने आलेख ''निस्संग–निस्पृह–निर्द्वन्द्ध प्रकृति बनाम श्रीगोपीनाथजी'' में उन्हें श्रीजी–सेवा–सुविधा–वृद्धि और सम्प्रदाय–विस्तार के लिए यात्राओं (परदेश) का हेतु बताकर पार्थ नहीं पार्थ–सारथी के रूप में स्मरणीय कहा है। पुष्टिमार्ग–मर्मज्ञ श्रीगदाधर भट्ट ने अपने आलेख में पुष्टिमार्ग के पुरोधा श्रीगोपीनाथ प्रभु और श्रीविट्ठलनाथजी दोनों भ्राताओं के मध्य अत्यन्त सरस, मधुर, पांडित्य एवं आत्मीयता पूर्ण सम्बन्ध दर्शाये हैं। सरल, सेवाभावी भक्त श्रीश्यामसुंदर गिरनारा का आलेख वैष्णवों को श्रीनाथजी से पूर्व गुसांईजी से शरणागत हो मिलने का प्रेरक है। परम भगवदीय वैष्णव श्रीगोपालदास व. नीमा ने

'श्रीयमुनाष्टकम्' पर क्रमशः अपने भाव वैष्णव जगत् को सुलभ कराते रहने का विश्वास दिलाया है। श्रीजी मन्दिर के प्रधान उपाध्याय श्रीब्रजभूषण भट्ट ने आशौच–विचार के क्रम में प्रस्तुत अंक में मरण–आशौच पर प्रकाश डाला है। ब्रज भाषा व पुष्टि साहित्य प्रचारक, कई ग्रंथों, कीर्तनों के सृजक श्री हरिप्रसाद (हरिदास) शर्मा ने अपने आलेख में सूरदासजी के शृंगार रस के पदों का सरस वर्णन किया है। गो. ति. श्रीदाऊजी दामोदरजी (द्वितीय) के बारे में कतिपय भावाभिव्यक्ति का प्रयास दयाशंकर पालीवाल ने किया है। प्रो. श्रीललितशंकर शर्मा का काव्य भक्तजन को प्रेम के दिव्यामृत का रसा स्वादन कराता है। शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय में वैदिक सिद्धांत का विद्वतापूर्ण प्रतिपादन किया है पं. श्रीविष्णुदत्त पुरोहित ने। परम भगवदीय वैष्णव श्री हरिनारायण नीमा ने अपने आलेख से छाक लीला के दर्शन व चिन्तन का परम आनन्द प्रदान किया है।

नवोदित लेखिका सुश्री आशिता विद्या रत्न ने अपने आलेख में श्रीकृष्ण को ही राधिका और राधिका को ही श्रीकृष्ण दर्शाया है। शिक्षा एवं विज्ञान के मनीषी भावुक वैष्णव श्रीप्यारेलाल पारीख ने प्रथम मिलन का भाव–पूर्ण वर्णन किया है। सेवाभावी, सरल, स्वभावी युवा भक्त श्रीरविराज ईश्वरचन्द्र ने ''गुसांईजी के उत्सव को ठाकुरजी ने करायो' का व्रज–भाषा युक्त वर्णन किया है। नवनीत प्रिय के व्रज–यात्रा मनोरथों पर सृजित छन्दों को प्रसिद्ध कवि घनश्याम की याद को ताजा करा देने वाले श्रीजमनालाल 'जमनेश' ने अगले क्रम में प्रस्तुत किया है। अमरीकन लेखक श्रीश्यामदास का अंग्रेजी आलेख अगले क्रम में सरस है। रसज्ञ रंजन भगवान् श्रीकृष्ण के साक्षात् स्वरूप प्रभु श्रीनाथजी का अनुग्रह, पूज्यपाद ति. गो. श्रीराकेशजी महाराजश्री की कृपा, चि. गो. श्रीविशाल बावा सा. का सम्यक् मार्ग दर्शन, मुख्य निष्पादन अधिकारी महोदय की सदाशयता, परामर्शदाताओं का परामर्श और विद्वान लेखकों का लेखन मेरा सम्बल रहा है। पुष्टिमार्ग पत्रिका का स्तर उत्तरोत्तर उत्तम बनता रहे यही रसज्ञ रंजन भगवान् श्रीनाथजी प्रभु से प्रार्थना है।

दयाशंकर पालीवाल (पूर्व प्राचार्य, शुद्धाद्वैत भूषण)
संपादक

अनुक्रमणिका

	विषय	प्रस्तोता	पृष्ठ सं.
*	सम्पादकीय	दयाशंकर पालीवाल	
1.	श्रीमद् भागवत सुधारस	(वचनामृत) पूज्यपाद गो. ति. श्रीगोविन्दलालजी महाराजश्री	6
2.	निस्संग–निस्पृह–निर्द्वन्द्व प्रकृति बनाम श्री गोपीनाथजी	डॉ. श्री राकेश तैलंग	8
3.	पुष्टिमार्ग के पुरोधा श्रीगोपीनाथ प्रभु	श्री गदाधर भट्ट	10
4.	प्रगटित सकल सृष्टि आधार, श्रीमद् वल्लभ–राजकुमार	श्री श्यामसुन्दर गिरनारा	12
5.	''श्रीयमुनाष्टकम्''	श्री गोपालदास व. नीमा	14
6.	पुष्टिमार्ग के मन्दिरों में आशोच विचार	श्री ब्रजभूषण भट्ट	15
7.	श्री सूरदासजी के शृंगार रस के पद	पं. श्री हरिप्रसाद (हरिदास) शर्मा	18
8.	दुहेरे मनोरथकर्ता गो. ति. श्रीदाऊजी दामोदरजी द्वितीय	दयाशंकर पालीवाल	23
9.	पुष्टि–प्रेम–निरूपण	प्रो. श्री ललितशंकर शर्मा	25
10.	शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय में वैदिक सिद्धांत प्रतिपादन	पं. श्री विष्णुदत्त पुरोहित	26
11.	'लाडिलो छाक खात बन मांहि'	श्री हरि नारायण नीमा	29
12.	तीन लोक तारण तरण है तेरे आधीन	सुश्री आशिता विद्यारत्न व्यास	32
13.	प्रथम मिलन	श्री प्यारेलाल पारिख	33
14.	गुसाईंजी को उत्सव श्रीठाकुरजी ने करायो	श्री रविराज ईश्वरचंद्र सनाढ्य	39
15.	नवनीत प्रिय की व्रजयात्रा के ब्रज विहार कवित्त छन्द	वैद्य श्री जमनालाल 'जमनेश'	41
16.	THE LIFE OF SHRI MAHAPRABHU VALLABHACHARYA (c. 1479-1531)	-SHYAM DAS	42
17.	सदस्यता फार्म (हिन्दी)	मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा	43
18.	सदस्यता फार्म (अंग्रेजी)	मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा	44

पुष्टिमार्गीय विद्वज्जन से प्रामाणिक आलेख सादर आमन्त्रित है–

वचनामृत

श्रीमद्भागवत् सुधारस

गो. ति. श्री गोविन्दलालजी महाराज

पूज्यपाद श्रीमद्वल्लभाचार्य ने वेद, श्रीकृष्ण वाक्य गीता, व्यास–सूत्र एवं समाधि में स्वयं अनुभव करके व्यासजी ने जो निरूपण किया वह समाधि भाषा तथा वेदादि से अविरूद्ध सभी शास्त्र प्रमाण माने है, ''वेदाः श्रीकृष्ण वाक्यानि व्यास–सूत्राणि चैव हि, समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणां तच्चतुष्टयम्'' इसमें भागवत पद न देकर जो समाधि भाषा पद दिया है उसका तात्पर्य यह है कि श्रीमद्भागवत में लौकिकी तथा मतान्तर भाषा भी है। ये दोनों समाधि भाषा की पोषिकाएँ है निर्णायिका नहीं है, निर्णायिका तो केवल समाधि भाषा ही है, इसलिए समाधि भाषा को प्रमाण कोटि में लिया है।

श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण के पूर्ववर्ती आचार्यो ने वेद, गीता और व्याससूत्र को प्रमाण माना है और श्रीमदाचार्यचरण समाधि भाषा का भी निर्देश कर प्रस्थान चतुष्टय को प्रमाण मानते हैं।

वेद और उपनिषद् अति संक्षिप्त तो हैं ही, साथ ही उनमें परब्रह्म का खण्डशः वर्णन किया गया है, कर्मकाण्ड में ब्रह्म क्रियारूप में और उपनिषद् में ब्रह्म का ज्ञान रूप में निरूपण हुआ है, क्रिया एवं ज्ञान उभयविशिष्ट निरूपण भागवत में है।

प्रामाण्य कोटि में वही ग्रंथ मान्य है जो शास्त्र हो, शास्त्र का शास्त्रत्व यही है कि वह सभी सन्देहों का निराकरण करे जैसा कि कहा है ''शास्त्र सन्देहवारकम्'' शास्त्र अपूर्व होना चाहिये। अपूर्व शास्त्र ही प्रमाण होता है। लोक में किसी ने न जाना हो ऐसे अर्थ का समझाने वाला ग्रंथ ही अपूर्व कहा गया है, ''लोकानधिगतार्थ गन्तृत्व प्रामाण्यम्'' श्रीमद् भागवत इसलिए अपूर्व शास्त्र है, एक बात यह भी है कि वेदादि की सूत्ररूप वाणी सर्वगम्य नहीं है। श्रीमद् भागवत वेदादि वाणी का विस्तार है, इसी हेतु यह सर्वोपयोगी सर्वोपकारक है।

इतिहास तथा पुराण की उपयोगिता और उनकी महत्ता इसलिए है कि वे वेदादि वाणी के अतिनिगूढ तथा अति संक्षिप्त अर्थ को विशद् करते हैं, ''इतिहासपुराणभ्यांवेद समुपबृंहयेत्''

इनके अभाव में वेदादि वाणी के अर्थ को यथावस्थित समझना बहुत कठिन था, ''बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति'' सर्व सामान्य जनता जिस रूप में सर्वसन्देह निरास पूर्वक विस्तार से कहे गये पुराणों द्वारा वस्तु को समझ सकती है उस रूप में सूत्रात्मक वेदों से नहीं समझ सकती, अतएव लोक में श्रीमद्भागवत का प्रचार विशेष है।

श्रीमद् भागवत में भगवल्लीलाओं का निरूपण है। ब्रह्मसूत्र एवं गीता आदि की रचना करके भी व्यासजी को जब सन्तोष नहीं हुआ तब भगवान् ने ही अपने हृदयरूप नारदजी को भेज कर व्यासजी को श्रीमद्भागवत् का ज्ञान कराया।

समाधि में जिन पदार्थों का प्रकाश भगवान् ने कराया व्यासजी ने विपुल रूप में अपनी भाषा में उन्हें अभिव्यक्त कर दिया। अतएव भागवत समाधि भाषा के रूप में कही जाती है, देवरूप होने से श्रीमद् भागवत के अक्षरों का भी अर्थ है। श्रीमद् भागवत सिद्धान्तार्थ सात प्रकार के है। कथा रूप इन सातों से पृथक् है, शास्त्र, स्कन्ध, प्रकरण, अध्याय, वाक्य, पद और अक्षर इन सातों अर्थों का समन्वय एक ही अर्थ में हो जाए तब भावगत का अर्थ पूर्ण कहा जाता है। श्रीमद् भागवत के शब्द और अर्थ पुरूषोत्तम है। अर्थात् शब्दार्थ रूप में श्रीमद् भागवत ही पुरूषोत्तम है इसके श्रवणमात्र से भगवत् सान्निध्य प्राप्त होता है।

'द्वादशोह वै पुरूषः' श्रीमद्भागवत् के बारह स्कन्द ही भगवान् के बारह अंग है। श्रीमद् भागवत् में प्रथम स्कन्ध से लेकर द्वादश स्कन्ध तक भगवान् की बारह लीलाओं का निरूपण हैं, इनमें दस लीला प्रधान है।

श्रीमद् भागवत के इस अलौकिक किंवा विलक्षण स्वरूप का साक्षात्कार श्रीमदाचार्य चरण ने अपनी श्रीसुबोधिनी में कराया है।

श्रीमद् भागवत के रसमय अर्थ की प्रतीति श्रीसुबोधिनी के पुनः पुनः श्रवण मनन निदिध्यासन द्वारा कृतिसमवेत भाग्यशाली को सहज सुलभ है।

श्रीमद् भागवत पर श्रीसुबोधिनी रूप व्याख्यान का पाण्डित्य स्तर ही विचार किया जाय तो पाण्डित्य अपूर्व है, अनुपम है।

अपार जलराशि से उच्छलित भावोर्मिशोभित इस सुबोधिनी रूप महार्णव को देखकर क्या कोई इसके स्वरूप का निर्देश विशेष रूप से कर सकता है? अस्तु

उपर्युक्त कारणों से श्रीसुबोधिनी सुधारस का आस्वादन करना प्रत्येक पुष्टिमार्गीय वैष्णव के लिए आवश्यक है किन्तु दुरूह होने से वह सर्व सामान्य सुलभ नहीं है। अतः श्रीसुबोधिनी सुधारस जनता को आस्वादन कराने का जो अनुवाद का एवं प्रकाशक श्रीनन्ददासजी का प्रयास है, वह प्रशंसनीय है।

श्रीमदाचार्य चरण विरचित 'श्रीसुबोधिनी सुधा' का सर्व सुलभ हिन्दी अनुवाद सम्प्रति अत्यावश्यक है, परन्तु इसके स्वारस्य का यथावत् हिन्दी रूपान्तर भगवदनुग्रह से सम्भव हैं। इस लक्ष्य को दृष्टि पथ में रखकर यह प्रयास सराहनीय है। श्रीमदाचार्यचरण अपने कृपा बल से इसे सम्पन्न करें यही शुभाशीर्वाद।

(श्रीसुबोधिनी टीका का हिन्दी अनुवाद से साभार)

।। जय श्रीकृष्ण ।।

निस्संग–निस्पृह–निर्द्वन्द्व प्रकृति बनाम श्रीगोपीनाथजी

–डॉ. श्रीराकेश तैलंग, राजसमन्द

श्रीवल्लभ संप्रदाय की आचार्य परम्परा में श्रीगोपीनाथजी संभवतः एक मात्र ऐसे महामना रहे जिन्हें विदेह मानसिकता के सन्त कहा जा सकता है। पितृचरण श्रीवल्लभाचार्य की वीतरागी एवं त्यागमयी प्रवृत्ति का संस्कार जिस रूप में श्रीगोपीनाथजी तक संप्रेषित हुआ वह उनमें अपरिग्रही वृत्ति के चरम के रूप में उनकी जीवनचर्या में आगे चलकर दृष्टिगोचर हुआ। अनुज गो. विट्ठलनाथजी के पुष्टि जगत् को अवदान को भारतवर्ष कभी विस्मृत नहीं कर सकेगा लेकिन इस देन के पीछे ज्येष्ठ भ्राता के रूप में गो. गोपीनाथजी की जो प्रेरणादायी भूमिका है वह और भी अधिक अविस्मरणीय है। श्रीवल्लभाचार्यजी के नित्य लीला प्रवेश के बाद आचार्यत्व की जिस पूर्व पीठिका पर श्रीगोपीनाथजी की वैष्णवजगत् को देन रही वह अवधि की दृष्टि से अल्पकालीन लेकिन महाप्रभुजी के जीवन दर्शन में प्रच्छन्न संवृत्ति से निवृत्ति मार्ग की ओर ले जाने वाली संदृष्टि से परिपूर्ण रही।

कहना नहीं होगा कि श्रीगोपीनाथजी का आचार्य परम्परा में वैशिष्ट्य पितृचरण के अवसान के बाद भागवत् धर्म के सतत् प्रचार में पुरोधा के रूप में रहा। श्रीगोपाल मंत्र का पुरश्चरण करते हुए अनायास ही अपने परिवार को पितृत्व के पास छोड़कर जगन्नाथजी के मुख में प्रविष्ठ हो जाने की किंवदन्ति उनके विराट् त्याग की ओर स्पष्ट संकेत है। विशेषकर तब जब उनकी धर्मपत्नी का भी अपने पति के परिवार की श्री सम्पन्नता को सहज ही त्याग देने के प्रति अन्तस् में कहीं गहरा विरोध था।

श्रीगोपीनाथजी को अपने पितृचरण से शिक्षा के जो अनमोलरत्न प्राप्त हुए उनमें वे अत्याधिक महत्वपूर्ण हैं जो आपने अपने पिता के उस अवस्था में पाए जब महाप्रभुजी ने वाक् संन्यास ले लिया था। मौन के संवाद से मुखरित 'शिक्षा श्लोक' की वाणी का महत्व गोपीनाथजी के लिए इस रूप में था क्योंकि वह शब्दातीत होने से प्रभाव संकुलता की दृष्टि से उन्हें अधिक वरेण्य थी। यही अवाक् संप्रेषण उनके अन्दर भी संस्कार के रूप में प्रस्थापित हुआ जिसका प्रमाण उनके कर्त्तव्य कर्म के एकान्त व एकल प्रयासों के रूप में परिलक्षित होता है।

पिता के नित्य लीलास्थ होने के बाद माता व छोटे भाई को लेकर काशी से आकर अड़ेल बसना, परिवार को पिता के अभाव की अनुभूति न होने देना उनके अनूठे गृहस्थ धर्म की पालना के दृष्टान्त कहे जा सकते हैं।

वह पुष्टि सृष्टि के लिए एक ऐतिहासिक सुखद परिवर्तन का पल था जब आपने बड़ी कुशलता से बंगाली वैष्णवों द्वारा प्रभु श्रीनाथजी के द्रव्य का दुरूपयोग करने के दुष्टता व स्वार्थपरक प्रयासों का करारा उत्तर दिया और उनसे कूटनीति के साथ श्रीनाथजी की सेवा छीनकर सेवा भावी ब्रजवासियों को दिलाने का कृत कार्य किया।

ब्रजवासी समाज को सेवा के माध्यम से आजीविकोपार्जन की परम्परा के वे पुरस्कर्त्ता कहे जा सकते हैं। यही नहीं, एक और आवश्यकता धारित सेवाधर्मी साँचीहर समाज को भी उन्होंने प्रभु की पाक, सेवा से जोड़कर उन्हें अनन्यमार्गी बना दिया। ब्रजवासी और साँचीहर दोनों ही समाजों को श्रीजी की सेवा में अत्यधिक निकटता प्रदान करने का उनका उपक्रम उनके निस्पृह सामाजिक व्यक्तित्व का परिचायक है।

श्रीगोपीनाथजी के पुष्टि जगत् के विस्तार के एकल प्रयासों का एक उल्लेखनीय कार्य था उनके द्वारा श्रीनाथजी की सेवा सुविधाओं में श्रीवृद्धि हेतु की गई यात्राएँ जिन्हें पुष्टिमार्ग में 'परदेस' कहा जाता है। गुजरात सिन्ध और द्वारका प्रान्त की इन यात्राओं ने संप्रदाय के विस्तार को गरिमापूर्ण आयाम दिए। कालान्तर में गुजरात में ये 'परदेस' पुष्टि सृष्टि के विस्तार के हेतु बने।

श्रीगोपीनाथजी को पुष्टि संप्रदाय की आधार भित्ति के रूप में देखा जाना चाहिए। अपने लघु भ्राता श्रीविट्ठलनाथजी को वैष्णव जगत् में नेतृत्व देने वाली धार्मिक शक्ति के रूप में खड़े करने का श्रेय उन्हीं को जाता है। यदि ऐसा न होता तो कृष्णदास अधिकारी से प्रताड़ित हो चन्द्र सरोवर में निवास करने को विवश श्रीविट्ठलनाथजी को पुनः श्रीनाथजी की सेवा का दायित्व उन्हें दिलाने का अवसर ही इतिहास को नसीब नहीं होता।

श्रीगोपीनाथजी काँकरवाड़ की भाषायी परम्परा के वाहक थे। उनके तेलुगू में लिखे अपने भ्राता विट्ठलनाथजी को सम्बोधित पत्र तेलुगू व संस्कृत में उनके परम वैदुष्य के परिचायक हैं। साधन दीपिका नामक उनका ग्रन्थ उनके रूद्रमार्गानुयायी शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का विमर्श ग्रन्थ कहा जा सकता है। कहा जाता है कि यह व ऐसे ही उनके द्वारा लिखे अनेक ग्रन्थ जो आज अनुपलब्ध हैं, उनके अडेल, चरणार व गोकुल के एकान्तवास की देन हैं। यह बात अलग है कि अपनी अन्तर्मुखी, एकाकी एवं निःसंग निस्पृह–निर्द्वन्द्व प्रकृति के कारण वे सदैव पुष्टि नायक विट्ठलनाथजी के संप्रेरक के रूप में ही अधिक जाने जाते रहे, वल्लभ संप्रदाय की वल्गा के संवाहक के रूप में कहीं कम।

प्रश्न है– पुष्टि जगत् गुसाँई गोपीनाथजी को क्यों कर स्मरण रखेगा? इन पंक्तियों के लेखक का अभिमत है कि पुष्टि प्रवाह में आपश्री की वंशानुगत स्थिति नहीं बल्कि वंश के पोषण हेतु आपकी सूक्ष्म दिशा दृष्टि के लिए आपको याद किया जाएगा। वे पार्थ नहीं पार्थ सारथी के रूप में वैष्णव जगत् के लिए स्मरणीय होंगे। वे महाप्रभुजी की पृथ्वी प्रदक्षिणा में छिपे मत विस्तार के उद्देश्य से और आगे चलकर अपनी परिवार परम्परा और उसके चिन्तन को प्लेटफॉर्म देने के मिस की गई उनकी परदेश यात्राओं के लिए स्मरण किए जाएंगे। वे उस त्याग के लिए याद किए जाएंगे जो स्वयं के तिरोभाव से अपने भ्राता के आविर्भाव को देखकर आनन्दित व आत्मतुष्ट हुआ करता था। सम्भवतः इसीलिए गुसाईं विट्ठलनाथजी भी ''यदनुग्रहतो जन्तुः'' कहकर अपने ज्येष्ट भ्राता का सम्मान करते थे। इति।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

पुष्टिमार्ग के पुरोधा श्रीगोपीनाथ प्रभु

–श्री गदाधर भट्ट, झालावाड़

श्री गोपीनाथजी का प्राकट्य वि. सं. 1567 एवं तिरोधान 1599 में हुआ था। विधिवत् यज्ञोपवीत संस्कार के उपरान्त उन्होंने वेद, उपनिषद् एवं शास्त्रों का गंभीर अनुशीलन किया। यह शिक्षा–दीक्षा वाराणसी में हुई। पितृचरण श्री मद् आचार्य चरणों में श्री गोपीनाथजी ने अणु भाष्य, सुबोधिनीजी एवं प्रमुख सम्प्रदाय के ग्रन्थों का अध्ययन किया एवं दक्षता प्राप्त की।

आचार्य चरण अत्यन्त सरल, सात्विक वृत्ति के थे, उनका पांडित्य एवं अनासक्ति अपरिग्रह पूर्ण जीवन था। व्यक्तित्व का असाधारण प्रभाव श्री गोपीनाथजी के जीवन पर देखा जा सकता है। आचार्य द्वारा 18 वर्ष की आयु में श्री गोपीनाथजी को सम्प्रदाय एवं शुद्धाद्वैत पुष्टि भक्ति का दायित्व सौंपा गया। प्रयाग में सन्यास ग्रहण कर श्रीमद् वल्लभाचार्य जब गंगाजी की धार में अन्तर्धान होने के लिए पधारे तब वहां उनके पुत्र श्री गोपीनाथजी एवं विट्ठलनाथजी विद्यमान थे। दोनों पुत्रों के अनुरोध पर अंतिम शिक्षा के रूप में आचार्य ने श्लोकों का जो गंगाजी की रेत में लेखन किया वे श्लोक पुष्टिमार्ग में ''शिक्षा श्लोक'' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

श्रीमद् वल्लभाचार्य के नित्य लीला में प्रवेश के पश्चात् आचार्यत्व का दायित्व श्री गोपीनाथजी पर था। दोनों भ्राता गिरिराजजी गए। उस समय श्रीनाथजी की सेवा बंगालियों द्वारा की जा रही थी जो अव्यवस्थित थी। उनको हटाकर नई व्यवस्था की गई।

गोपीनाथजी ने यात्राएँ प्रारम्भ की, जिनका उद्देश्य पुष्टि सिद्धान्तों का प्रचार एवं कृष्ण भक्ति का प्रसार था। उन्होंने यात्राओं में असंख्य धन अर्जित किया जो श्रीनाथजी प्रभु की सेवा में समर्पित कर दिया।

गोपीनाथजी ने अनेक यात्राएँ की जिनमें जगदीश, अडैल, गुजरात, सिन्ध, द्वारका की यात्राएँ प्रमुख हैं। लम्बे प्रवास के कारण श्रीनाथजी की सेवा की देखभाल का दायित्व विट्ठलनाथजी पर आ गया। बीच में अधिकारी कृष्णदास द्वारा सेवा में व्यवधान उत्पन्न होने से गोपीनाथजी ने उसका निराकरण किया।

आचार्य चरण के सान्निध्य में गोपीनाथजी का विवाह सम्पन्न हुआ। एक पुत्र पुरुषोत्तमजी एवं दो पुत्रियाँ सत्यभामा एवं लक्ष्मी–तीन संतानों का उल्लेख मिलता है। इनके संबंध में विशेष वृत्त उपलब्ध नहीं है। श्रीगोपीनाथजी एवं श्रीविट्ठलनाथजी दोनों भ्राताओं के बीच में अत्यन्त सरस, मधुर संबंध थे। समय–समय पर दोनों के बीच संस्कृत भाषा में पत्राचार होता था जो पांडित्य एवं आत्मीयता का द्योतक है। मंगलाचरण में से अपने अग्रज को नमन करते हैंः–

यदनुग्रहतो जन्तुः सर्व दुःखा तिगो भवेत्।
सर्वदा वन्दे श्रीमद् वल्लभनन्दनम्।।

श्रीविट्ठलनाथजी द्वारा रचित यह श्लोक श्री गोपीनाथजी के प्रति समादर भाव श्रद्धा का परिचायक है।

श्रीगोपीनाथ का पांडित्य एवं सम्प्रदाय का विशद अध्ययन–सुविदित है। आश्चर्य है सम्प्रदाय में उनका मुख्य साधन दीपिका ग्रन्थ ही उपलब्ध है, अन्य है सेवा विधि, नाम निरुपण संज्ञा, वल्लभाष्टक, सौन्दर्य पद्य। वे भागवत के अनन्य भक्त थे, सम्पूर्ण भागवत् का प्रतिदिन पारायण करने से प्रभु सेवा में व्यवधान रहता था। अतः आचार्य चरण ने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' का भागवत से प्रणयन कर श्री गोपीनाथजी को नित्य पाठ करने की आज्ञा प्रदान की। पुरुषोत्तम सहस्रनाम का पाठ सम्पूर्ण भागवत पारायण का फल प्रदान करता है।

अपने 'साधन दीपिका' ग्रन्थ में श्रीगोपीनाथजी ने भागवत आदि शास्त्रों के तत्वज्ञान को प्राप्त कर दंभ रहित प्रभु सेवा करने का निर्देश दिया है। स्वमार्गीय गुरु का प्रथम कर्तव्य है वह भगवत्प्राप्ति के लिए दैवी जीवों को प्रेरित करे। ग्रन्थ में स्वमार्गीय द्विज शिष्यों के कर्तव्य, दीक्षित वैष्णवों के लिए सप्त विध भक्ति का उपदेश, जगन्नाथपुरी, द्वारका, ब्रज आदि स्थानों पर भगवत्पूजा, अनुष्ठान एवं भगवत्सेवा, भगवद् भजन की अपरिहार्यता, गुरुसेवा एवं प्रपन्नता (शरणागति), भागवत पारायण की आवश्यकता, वर्ण, आश्रम–निष्ठा एवं पालन, स्वरूप–सेवा, सेवा–प्रक्रिया एवं सेवा विधान, सभी की विस्तार से चर्चा है। ग्रन्थ के अन्त में श्री गोपीनाथजी का कथन है– इस प्रकार से भक्ति शास्त्र में जो आचार निरुपित है, वह आचार ही पुष्टि भक्तों के लिए इष्ट व सिद्धप्रद हैः–

इत्येवं भक्ति शास्त्रेषु यदाचारों निरुपितः।
तदाचारं भजेदत्र नान्यथा गतिरिष्यते।। (सा.दी.129)

अन्त में पुरोधा श्री गोपीनाथजी को जो महाप्रभुजी के प्रतिनिधि, तेज के भण्डार, दया के सागर त्रिगुणातीत एवं सद्गुणों के निधि हैं, उनके आत्मज गो. श्रीपुरुषोत्तमजी रचित मंगलाचरण द्वारा सादर नमन स्मरण करते हैं।

श्री वल्लभप्रतिनिधिं, तेजोराशिं दर्याणवम्।
गुणतीतं गुण निधिं श्री गोपीनाथमाश्रये।

(गो.श्री पुरुषोत्तमजी)

।। जय श्रीकृष्ण।।

‘प्रगटित सकल सृष्टि आधार, श्रीमद् वल्लभ– राजकुमार’

–श्रीश्यामसुन्दर गिरनारा

पुष्टिमार्ग में वैष्णव जन्माष्टमी महोत्सव धूमधाम से मनाते हैं, श्रीमहाप्रभुजी के उत्सव में तो इतना उत्साह नजर आता और गुसाईंजी के उत्सव में तो कम, जबकि गुसांईजी का उत्सव स्वयं श्रीनाथजी ने माना है। श्रीनाथजी ने रामदासजी को कहा– ‘मेरे जन्म दिवस के दिन गुसांईजी स्वयं बहुत बड़ा उत्सव करते हैं अतः मुझे श्रीगुसांईजी का जन्मदिवस मनाना है इसलिये तुम सब मिलकर गुसांईजी के जन्म दिवस का मंडान करो, मुझे सामग्री अरोगाओ, कल जन्म दिन है। जब रामदास ने विनती की कि क्या सामग्री अरोगायें? तो श्रीनाथजी ने स्वयं रस रूप जलेबी हेतु निर्देश दिया। सवाल जलेबी का नहीं है, सवाल रस रूप सामग्री का है, रस रूप सामग्री का तात्पर्य गुसांईजी के रस रूप से है। श्रीनाथजी ने अप्रत्यक्ष रूप से पुष्टि जगत् को बता दिया कि गुसांईजी रस रूप हैं– रसो वै सः ब्रह्म के समान बल्कि स्वयं ब्रह्म स्वरूप। छीतस्वामी ने गाया है–

नहीं मति नाथ! कहां लौं बरनों अगनित गुन–गन सार।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल प्रगट कृष्ण अवतार।।

जब गुसांईजी स्वयं कृष्ण रूप हैं तो क्यों न उनका जन्म दिवस श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के समान अत्यंत धूमधाम से मनाना चाहिये। देखा जाय तो जन्माष्टमी से भी अधिक क्योंकि जिसका जन्म दिवस स्वयं श्रीनाथजी मनाते हों तो विशेषता कितनी अधिक होगी यह विचारने जैसा है। दरअसल इसका कारण यह हो सकता है कि वैष्णव जगत् गुसांईजी के अद्‌भुत जीवन–प्रसंगों से अनजान हैं। जो वैष्णव दो सौ बावन वैष्णव वार्ता से परिचित हैं वे जानते हैं कि उसमें कदम कदम पर गुसांईजी की महानता का परिचय मिलता है। उनका श्रीनाथजी के प्रति समर्पण पूर्ण है। श्रीनाथजी से कैसा प्रेम होना चाहिये यह गुसांईजी को देखकर ही जाना जा सकता है। ऐसी प्रीत कहुं नहीं देखी। यशुमति सुत श्री वल्लभ सुत जैसी शेष सहस्त्र मुख जात न लेखी।। आज्ञा मांग चले श्रीगोकुल फिर फिर झांक झरोखन पेरवी। सुनियत कथा जलद चातक की कुमुदिनि चंद्र चकोर विशेखी।। इनको कियो सबै जिय भावत करत शृंगार विचित्र विशेखी। गोविन्द गोवर्धन पें मागत विछुरो पलछिन अर्द्धन मेखी।। गुसांईजी जब श्रीनाथजी से विदा होकर गोकुल पधारते हैं तब उनका चित्त तो श्रीनाथजी में ही लगा है, वे फिर फिर कर श्रीनाथजी की ओर देखते हैं और श्रीनाथजी का चित्त गुसांईजी में लगा है। महाप्रभुजी ने कहा– ‘चित्त को प्रभु में पिरोना ही सेवा हैं’ मगर यहां तो प्रभु का चित्त गुसांईजी में पिरोया है। ऐसे भाग्यशाली वैष्णव कितने हैं? बरेड़िया में जरूर गुसांईजी की बैठक

में सेवा करने वाली हीरा माजी का उल्लेख मिलता है। गुसांईजी से इतना प्रेम जीवन को अवश्य धन्य बना देता है। अस्तु–

गुसांईजी तथा श्रीनाथजी के अलौकिक प्रेम का उदाहरण कृष्णदासजी की वार्ता में मिलता है। गोविन्द स्वामी ने जब यह परस्पर असीम प्रेम अनुभव किया तो गिरिराजजी से विनती की– 'हे गिर्राज बावा, परस्पर ऐसा असीम प्रेम करने वाले कभी बिछुड़ें नहीं' ऐसे में यह आश्चर्यजनक है कि कृष्णदास में यह साहस कैसे हुआ कि उन्होंने गुसांईजी तथा श्रीनाथजी में विछोह करवा दिया? इसके तार निःसंदेह गोलोक की लीला से जुड़े हुए हैं परन्तु जगत् तो अपनी ही दृष्टि से देखता है। गुसांईजी ने कृष्णदास को विशेष अधिकार दिया कि हमारी भी सेवा में त्रुटि हो तो तुम उसे रोकना। बस फिर क्या था? अधिकार मद आते क्या देर लगती है परन्तु जो सही अर्थ में महान् है उससे अगर कोई श्रेष्ठतर बनना चाहेगा तो उसे सफलता कैसे मिल सकती है? अंत में कृष्णदासजी को गुसांईजी की महानता के आगे झुकना पड़ा तथा उन्होंने अश्रुपूरित हृदय से गान किया–

'परम कृपाल श्री वल्लभ नंदन करत कृपा निज हाथ दे माथें।
जे जन शरण आय अनुसरही गहि सोंपत श्रीगोवर्धन नाथें।।
परम उदार चतुर चिंतामणि राखत भवधारा ते साथें।
भजि कृष्णदास काज सब सरहीं जो जाने श्रीविट्ठलनाथें।।

तो क्या पहले कृष्णदासजी गुसांईजी को नहीं जानते थे? निश्चय ही कोई न कोई आवरण आया, जैसे ही आवरण हटा कृष्णदासजी को अपनी भूल का अनुभव हुआ। गुसांईजी शरणागत को श्रीनाथजी से मिलाते हैं यह क्या कम बात है? यदि किसी वैष्णव को दुख हो कि अब तक श्रीनाथजी मिले क्यों नहीं? तो उसे गुसांईजी की तरफ देखना चाहिये। गुसांईजी बेहद दयालु हैं, वे वैष्णव का क्या, किसी भी जीव का कष्ट सहन नहीं कर पाते। गुसांईजी के जीवन में दया–करुणा के अनेक प्रसंग हैं। वैष्णवों को उनका स्मरण करना चाहिये। शरणागत अनुसरणकर्ता को देखकर गुसांईजी स्वतः उसे श्रीगोवर्धननाथजी को सौंप देते हैं कि लो प्रभु, यह एक और। निश्चय ही जीवन धन्य हो सकता है यदि वैष्णव जीव प्रभु चरण गुसांईजी श्री विट्ठलनाथजी की शरण में आता हो। नंददासजी हृदयपूर्वक गाते हैं–

''प्रात समैं श्रीवल्लभसुत कौ उठत ही रसना लीजिये नाम।
आनंदकारी प्रभु मंगलकारी अशुभ हरन जन पूरन काम।।
ये ही लोक परलोक के बंधु को कहि सकै तिहारे गुनग्राम।
'नंददास' प्रभु रसिक सिरोमनि राज करौ पिय गोकुल सुखधाम।''

श्रीगुसांईजी परम दयाल की जय।।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

श्रीयमुनाष्टकम्

–श्री गोपालदास, वल्लभदास नीमा, इन्दौर

नमामि यमुना महं सकलसिद्धि हेतुं मुदा
मुरारि–पद–पंकज–स्फुरद मन्द रेणुत्कटाम्।।
तटस्थ–नव–कानन–प्रकट–मोद–पुष्पाम्बुना
सुरासुर–सुपूजित–स्मर पितुः श्रियं बिभ्रतीम्।।१।।

अनुवाद :– सकल सिद्धियों को प्रदान करने वाली, हे यमुनाजी मैं वल्लभ आपको प्रणाम (नमन) करता हूँ। यमुनाजी के दर्शन से वल्लभाधीश अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं एवं हर्ष पूर्वक यमुनाजी को नमस्कार करते हैं। ''मुदा'' शब्द का प्रयोग करके श्रीमहाप्रभुजी अपने उस हर्ष का, संकेत कर रहे हैं कि श्रीयमुनाजी ने वल्लभ के मन की बात जान, तुरन्त प्रगट हो, दर्शन दे, आपको कहा कि, जिस घाट पर आप खड़े हैं वही ''गोविन्द घाट'' है। इसीलिए आप प्रसन्न होकर श्रीयमुनाजी को नमन कर रहे हैं।

श्रीयमुना को ''सकल सिद्धि हे तुम'' कहा है। ''सकल'' से यह भी अभिप्राय है कि श्रीयमुना भक्त को श्रीपुरूषोत्तम की प्राप्ति करा देती है। भक्त को, भगवत्–संमुख करके, उसका, प्रभु के साथ–रमण संपादन करने की, अपनी सामर्थ्य के कारण आपका नाम ''यमुना'' है।

श्रीकृष्ण ''रसो वै सः'' हैं। श्रीयमुना ''रस–ब्रह्म'' हैं। श्रीकृष्ण– ''घनीभूत–रसात्मा हैं''। श्रीयमुना ''द्रवीभूत रसात्मिका'' हैं। ''नमामि यमुनामहं'' यह आठ अक्षर का मंत्र है। ''सकलसिद्धि हेतु मुदा'' यह नौ अक्षर का मंत्र है।

''श्रीयमुनाष्टकम्'' मंत्र है। श्रीमद्–आचार्य–चरण इसके ऋषि हैं। पृथ्वी छंद है। हरि–प्रिया कालिन्दी इसकी ''देवता'' हैं। ''रसो वै सः'' ''बीज'' है। प्रभु–संबंध संपादन में उपस्थित अन्तराय के निवारक श्रीमुररिपुकी प्रीति में ''विनियोग'' है। रासोत्सव की प्राप्ति ''सिद्धि'' है।

षोडश ग्रंथों में ''श्रीयमुनाष्टकम्'' वल्लभाधीश की सर्व प्रथम रचना है। पुष्टिजीव, भगवदीय कहे जाते हैं। इस सृष्टि के जीवों का एक मात्र धर्म है– हरि का स्मरण और सेवा (भजन); अर्थ है– हरि की प्रीति, काम है– हरि– दर्शन की लालसा; मोक्ष है– हरि के परम आनंदमय स्वरूप की अनुभूति। (क्रमशः)

।। जय श्रीकृष्ण ।।

पुष्टिमार्ग के मन्दिरों में आशौच–विचार

–श्रीब्रजभूषण भट्ट

पूर्व प्रकाशनों में सामान्य (प्रकीर्ण) आशौच एवं जनन–आशौच पर विस्तार से विचार किया गया। अब मरण–आशौच पर यथा सम्भव विस्तार से विचार किया जा रहा है। मरण–आशौच पर विचार प्रकट करना जटिलता लिए हुए है। अनेक मत–मतान्तर होने से भ्रान्तियाँ होना स्वाभाविक है। अलग–अलग ग्रन्थ, अलग अलग विचारक अपनी अपनी दृष्टि से कुछ अलग अलग विचार प्रकट करते आये हैं। उनका मंथन, चिन्तन–मनन कर यथा सम्भव, लोक प्रचलित जातीय परम्पराओं के आधार पर सारभूत विचार यहाँ प्रकट किये गये हैं। जिनका प्रायः मन्दिरों व जातियों में अनुसरण किया जा रहा है। श्रीनाथजी के मंदिर में मान्य उपाध्याय एवं पण्ड्याजी का निर्णय ही सर्वोपरि मान्य होता आया है।

मरण–आशौच में कुछ शब्दावली ऐसी है, जिसका स्पष्टीकरण अति आवश्यक है। यथा–सपिण्डी–सात पीढ़ी तक के पुरुष। समानोदक–आठ (8) से चौदह (14) पीढ़ी तक के पुरुष, सगोत्री–पन्द्रह (15) से इक्कीस (21) पीढ़ी तक के पुरुष।

अतिक्रान्त–आशौच– जो आशौच, अवधि समाप्ति के बाद सुनने में आता है।

सन्निपात–आशौच– पहिले आशौच की अवधि समाप्त नहीं होने के पूर्व सुनने में आता है। अर्थात् पहिले आशौच में दूसरा आशौच आजाय।

अनुगमन– शव के पीछे श्मशान तक जाना।

देशान्तर– जहाँ मरण की सूचना नहीं पहुँचाई जा सकती।

बन्धुत्रयः– आत्म बन्धु (स्वयं के मामा के पुत्रादि, भुआ के पुत्रादि, मौसी के पुत्रादि), पितृ बन्धु (पिता के मामा के लड़के, पिता की भुआ के पुत्रादि, पिता के मौसी के पुत्रादि), मातृ–बन्धु (माता के मामा के पुत्रादि, माता की भुआ के पुत्रादि, माता की मौसी के पुत्रादि)

भिन्न पितृक– माता एक होय और पिता दूसरों होय।

अनौरस पुत्र– दत्तक (गोद लिया) पुत्र, कृत्रिम सम्बन्ध सूं बनायो पुत्र।

यज्ञोपवीत काल– लड़का को यज्ञोपवीत समय (वर्ष 9 से 16 वर्ष) लड़की के लिए विवाह एवं यज्ञोपवित समय समान माना गया है।

सच्छूद्र– गुवारिया, नाई, वैश्य आदि को माना गया है।

पक्षिणी– एक दिन और दो रात्रि या दो दिन व एक रात्रि

देशाचार (लोकाचार)– निवास स्थान की परम्परा व रीति–रिवाज।

ऋत्विज– यज्ञ कर्मादि कराने वाले पण्डित व आचार्य आदि।

शव–वहन– शव ले जाने वाले सजाति पुरुष व अन्य पुरुष।

सहज सम्बन्ध– सगाई (वाग्युज) आदि का ज्ञान हो जाने पर।

मरण–आशौच मूलतः रक्त–सम्बन्ध वंश–सम्बन्ध सगोत्र परगोत्र एवं अन्य सम्बन्ध व्यवहार पर अधिक आधारित है। जैसे जैसे रक्त सम्बन्ध वंश–सम्बन्ध दूर होता जाता है, वैसे वैसे आशौच की अवधि कम होती चली जाती है। इसी प्रकार जैसे जैसे गोत्र बदलता चला जाता है, वैसे–वैसे आशौच भी कम होता चला जाता है। सगोत्र में जब भी किसी दूर सम्बन्धी के मरण की खबर सुने, स्नान तो अवश्य करना चाहिए। सन्निपात आशौच में दस दिन के आशौच की तरह बारह, पन्द्रह, सोलह एवं एक मास के आशौच में वर्तमान परिस्थितियों को अवलोकित करके गणना करना अभीष्ट उचित प्रतीत होता है। हिन्दू समाज पुरुष प्रधान समाज है, जिससे पुरुष के मरण–आशौच की तरह उसकी स्त्री का भी शास्त्रानुसार आशौच मानना चाहिए। अग्निहोत्री का आशौच दाह के दिन से लगता है। अन्य का मरण–तिथि से आशौच मानना चाहिए। क्योंकि श्राद्ध की तिथि शास्त्रों ने क्षय–तिथि ही मानी है। उच्च वर्ण के पुरुषों को यथा सम्भव, निम्न वर्ण के शव का शव–वहन नहीं करना चाहिए। अनुगमन शुद्धि प्रायः सचैल–स्नान (पहने हुए वस्त्र सहित) से ही मानी गयी है। अस्थि स्पर्श पर स्नान आवश्यक है। शुद्धि में स्नान, सचैल स्नान ही मान्य है। शास्त्रों ने प्रायः शव–दाह के बाद ही शुद्धि मानी है। पक्षिणी, त्रिरात्र आशौच की शुद्धि शव–दाह के पश्चात ही उचित है। देव–कार्य, धर्म–कार्य आशौच काल में निषिद्ध माना गया है। मृताशौच में आशौच वाले का स्पर्श नहीं करना चाहिए एवं उस घर का भोजन, अन्न, जलपान आदि भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। आशौच–अवधि में बारह मास के श्राद्धों का अपकर्म नहीं किया जा सकता। मरण में पूर्ण बारह दिवस का अपर–कर्म करने के बाद, एक दिवस छोड़कर, चौदह–पन्द्रह में दिवस बारह मास के श्रादों का अपकर्ष, वर्तमान परिस्थितियों को अवलोकित करते विशेष परिस्थिति में कर सकते हैं। यदि कन्या काल में किसी लड़की की मृत्यु हो जाय, तो विशेष पिण्ड देकर, कन्याओं को भोजन कराना चाहिए। यदि अविवाहित रजस्वला बड़ी कन्या की मृत्यु हो जाय तो ग्यारह दिवस तक की क्रिया कर, सपिण्डीकरण नहीं करैं एवं नागबलि करना उचित प्रतीत होता है। और उसका आशौच पूर्ण ही मानना चाहिए। दत्तक यथा सम्भव स्ववंशीय ही लेना उचित है। यदि ब्रह्मचारी ने माता–पिता का पूर्व में आशौच नहीं माना हो, तो समवर्त्तन के समय मानना चाहिए। श्रीनाथजी के मन्दिर की परम्परा अनुसार आशौच लगने पर भद्र कराना आवश्यक माना गया है, जिससे जिसको भी जितने दिन का आशौच लगता है, उसके बाद भद्र (बालदेना) कराना चाहिए। जिससे पूर्ण शुद्धि का रूप मान्य हो। विदेशों में रहने वाले सम्बन्धियों को सूचना मिलने पर आशौच मानना चाहिए एवं सचैल स्नान करना चाहिए। माता–पिता का आशौच जिस दिन सुनैं, उस दिन से पूरा मानना चाहिए। विस्तार से मरण–आशौच की सारिणी में विचार प्रकट करेंगे जो आगामी प्रकाशनों में प्रकाशित होगी।

कुछ जानकारी मृत्यु के बाद कार्य करने के सम्बन्ध में देना उचित समझता हूँ। वैसे सभी समाज–जाति में जानकर विज्ञ हैं और अपनी अपनी जाति–रिवाज के अनुसार कार्य सम्पादित कर रहे हैं। व्यक्ति या स्त्री के मरण के बाद गोबर–गोमूत्र से जगह लीपने के बाद, उस पर कुश–दूर्वा–घास आदि बिछा दे और शव को दक्षिणाभि मुख लिटा दें, सिर उत्तर दिशा की ओर रहे और पैर दक्षिण दिशा की आरे रहे। शव को स्नान आदि कराकर नवीन वस्त्र पहनायें और मुख में तुलसीदल, गंगा जल, चरणामृत डाल दें। मुख्य द्वार से सिर की ओर से निकाल कर, श्मशान तक ले जाकर काष्ठवत दाह करें। अपनी अपनी जाति–परम्परा के अनुसार पिण्डादि देने की क्रिया करें। जिस स्थान पर घर में गोबर लीपकर सुलाया गया है, उस स्थान पर तेल का एक बाती का दीपक जलायें, जो दस दिन तक जलता रहे। दशाह घाट के बाद घर में पैर धोकर प्रवेश करें एवं देव–दर्शनादि के लिए पुनः घर में स्नान कर देवालय जायें। तृतीय दिवस अस्थि संचय लोकाचार व जाति–परम्परानुसार दो भागों में करें। एक भाग अपर कर्म के लिए एवं दूसरा भाग पवित्र नदियों (गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा आदि) में विसर्जन के लिए रखे यथा सम्भव विसर्जन के बाद पाँचवे, सातवें या नवमें दिन से अपर–कर्म प्रारम्भ करें, बीच में कोई दिन खाली नहीं छोड़ें, जिससे कर्म खण्डित न हो। द्वादशाह तक अपर कर्म प्रतिदिन करते रहें। जाति–परम्परा का अनुसरण कर अपर कर्म पूर्ण करें। कहीं–कहीं बरसी सुविधानुसार साथ में करते भी देखे गये हैं, जो उचित नहीं है। यदि करना ही चाहें तो एक दिन बीच में छोड़कर चौदहवें या पन्द्रवें दिन करें, जिससे बरसी–कर्म प्रथक कर्म के रूप में मान्य हो सके। सब जातियों की परम्परायें कुछ भिन्न–भिन्न हैं। अपनी–अपनी जाति की परम्पराओं के अनुसार कार्य करें। यहाॅ तो सिर्फ मार्गदर्शन के रूप में विचार प्रकट किये गये है।

मरण–आशौच–विचार के सम्बन्ध में चार सारणियाँ यथा सम्भव आगामी प्रकाशनों में प्रकाशित की जायेंगी, जिनमें समस्त आशौच–विचार का समावेश किया जायेगा। यदि किसी बात पर भ्रान्ति हो, तो मन्दिर के मान्य उपाध्याय एवं पण्ड्याजी से समाधान करें और उनका निर्णय सर्वोपरि मान्य करें। अधिक क्या? यदि इन विचारों एवं आशौच का अनुसरण अनुपालन मन्दिर के सेवाकर्मी व मन्दिरों के आचार्य–सजातीय बन्धु करते हैं तो मैं अपने प्रयास को, मार्गदर्शन को सफल मानूँगा।

।। किमधिकम्। शुभम्।।   ।। जय श्रीकृष्ण ।।

श्रीसूरदासजी के शृंगार रस के पद

–पं. श्री हरिप्रसाद (हरिदास) शर्मा, आगरा

श्रीसूरदासजी अखण्ड भूमण्डलाचार्य वर्य्य जगद्‌गुरु महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्यजी के शिष्य हुए। आगरा और मथुरा के बीच गौघाट पर कंठी ब्रह्म सम्बन्ध की दीक्षा ग्रहण कर पुष्टिमार्गीय वैष्णव बने। जब महाप्रभुजी ने श्रीमद् भागवत की अनुक्रमणिका सुनाई तो उनके हृदय में भगवद् लीला स्फुरित हुई और वे गा उठे "ब्रज भयो महिर के पूत जब यह बात सुनी"

महाप्रभुजी जीव को ब्रह्म का अंश "स्फुलिग इव" मानते है अतः जीव भगवान् का दास है– स्वामी तो पर ब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम एक मात्र भगवान श्रीकृष्ण ही है। अतः इनका नाम "सूर स्वामी से बदल कर सूरदास रखा– "दासोहं" की भावना ही महाप्रभुजी का प्रमाणिक सिद्धान्त है। "ताते पहिले ये सूर स्वामी" कहावते। 84 वैष्णवों की वार्ता में इस सबका विवरण प्राप्त होता है।

महाप्रभुजी ने प्रमाण चतुष्टय में– वेदाः श्रीकृष्ण वाक्यानि, व्यास सूत्राणि चैवहि समाधिभाषा व्यासश्च प्रमाणं तत्चतुष्टयम् वेद को प्रथम प्रमाण माना है और वेद की रसो वै सः श्रुति के अनुसार ब्रह्म को रस रुप प्रतिपादित किया है। रस 9 प्रकार के हैं और उनका राजा शृंगार रस है।

"नव रस में कवि जन कह्यो, सबते अधिक शृंगार"

सूरदासजी पुष्टिमार्ग का जहाज माने जाते हैं अतः सभी रसों का वर्णन करते हुए शृंगार रस के पद बेजोड़ हैं। पुष्टिमार्ग में कृष्ण सेवा की प्रधानता है– कृष्ण सेवां सदाँ कार्या मानसी सापरामत (महाप्रभुजी) अतः सूरदासजी को गोवर्धन पर्वत के ऊपर विराजमान श्रीनाथजी की कीर्तन सेवा सौंपी गई। सेवा–मार्ग में नित्य सेवा क्रम और वर्षोत्सव सेवा क्रम–दो प्रकार प्रमुख है अतः श्रीसूरदासजी ने "जो देख्यो सो गायो" श्रीनाथजी की सेवा अष्टछाप संस्थापक गोस्वामी विठ्ठलनाथजी (श्रीप्रभुचरण गुसाँईजी) जिस प्रकार सेवा करते थे उसी प्रकार के पद श्रीसूरदासजी आदि अष्टछाप के पुष्टिमार्गीय वैष्णव कवि गाते थे, दूसरे शब्दों में श्रीगुसाँईजी के निर्देश अनुसार तथा श्रीमद् भागवत की टीका सुबोधिनीजी गुसाँईजी के मुखारविन्द से श्रवण कर उन्हीं भावों को कविता के माध्यम से वर्णन करते थे। जैसे 84 वैष्णवों की वार्ता में उल्लेख है कि महाप्रभुजी ने कारिका सुनाई–

नमामि हृदय शेषे लीलाक्षराब्धि शायनम्।
लक्ष्मी सहस्त्र लीलाब्धि, सेव्य मान्यं कला निधम्"

उसी को श्रवण कर सूरदासजी ने पद बनाया– चकई री चल चरण सरोवर जहाँ नहीं प्रेम वियोग वैसे पुष्टिमार्गीय सेवा पद्दति में श्रीकृष्ण भक्ति में मन लगाने हेतु नित्य लीला के कीर्तन, वर्षोत्सव के कीर्तन नित्य लीला वाद और अवतार चरित्र के आधार पर वर्णन किया गया है। लोक में मनाये जाने वाले उत्सव, षट ऋतुओं के उत्सव, लोक व्यवहार एवं वैदिक पर्वो के उत्सव तथा अन्य अवतारी जयन्ती भी सम्मिलित हैं।

श्रीसूरदासजी ने नैमित्तिक कर्मों एवं वर्षोत्सव को लक्ष्य करके विपुल साहित्य की रचना की है। यह भगवद् लीला गुणगान की परम्परा महाप्रभुजी की कृपा से सूरदासजी ने अंत समय तक निभाई, जिसमें हृदय की सरसता एवं उमड़ता हुआ भगवद् प्रेम परिलक्षित होता है। प्रेम रस और कवित्व रस की समन्वयता–सूरदासजी के पदों में दृष्टव्य है। श्रीसूरदासजी रसिक कवि के रुप में शृंगार रस के पदों का गान श्रीनाथजी के सन्मुख पुरुषोत्तम भाषा, ब्रजभाषा में संगीत की राग रागनियों सहित, ताल स्वर सहित जब गान करते थे तो उस भजनानन्द की अनुभूति को अनिर्वचनीय ही मानना पड़ेगा। महाप्रभुजी पुष्टिमार्ग में ब्रह्मानन्द से भी उच्चकोटिका आनंद भजनानन्द में मानते है सुबोधिनी दशम स्कन्ध की कारिका प्रमाण है– कारिका–

ब्रह्मानन्दात् समुदध्रत्य, भजनानन्द योजने।

अपने अंतरंग ब्रज भक्तों को बैकुण्ठ लीलाधाम के दर्शन कराये, परन्तु वे ब्रह्मलील न हो जावे इसलिये अहेतुकी कृपा करने के लिए उन्हें ब्रह्मानन्द में से निकालकर भजनानन्द में प्रवत्त किया। श्रीमहाप्रभुजी बधाई में भी प्रमाण मिलता है–

भजनानन्द प्रगट करिवे कूँ, भूतल आप पधारे। पुष्टिमार्ग में राग, भोग, शृंगार का समावेश रसात्मक ढंग से किया गया है। पाक, कला, चित्र कला आदि सबमें राग की प्रधानता है। मंगला में खण्डिता– नायिका के भाव के पदों का गान सूरदासजी ने गोपी भाव से भावित होकर किया है। गोपीभाव की सेवा ही पुष्टिमार्गीय सेवा है। इसका प्रमाण स्कन्ध–पुराण में भी उपलब्ध है।

श्लोक :– स्त्रियों पुरुषो वापि, भर्ता भावेन केशवः।

स्त्री हो अथवा तो पुरुष, भगवान् केशव की सेवा भर्ता भाव, यानि कान्त कान्ता युक्त माधुर्य भक्ति के भावों से भावित होकर ही करनी चाहिये। निम्न लिखित पद भी इसी भाव को सूचित करता है।

भज सखी भाव भाविक देव।
कोटि साधन करो कोऊ, तऊ न मानत सेव।
धूम्र केतु कुमार माँग्यो, कौन मारग नीति।
पुरुष ते त्रिय–भाव उपज्यो सबहि उलटी रीति।
वसन, भूषण, पलटि पहिरे, भाव ते संजोय।
उलटि मुद्रा दई अंकन वरण सूधे होंय।
वेद विधि कौ नैम नाहीं, प्रीति की पहिचान।
ब्रज वधु– वश किये मोहन, 'सूर' चतुर सुजान।

इसी प्रकार की भक्ति को, प्रेमा भक्ति, प्रेम लक्षणा भक्ति परा भक्ति अथवा दशधा–भक्ति कहा गया है। जो सहज, सरल और सरस भक्ति है। "सबसे दशधा भक्ति भली" जिन जिन कीनी तिन तिन की मति, अनत न कहूँ डुली।।

इसके साथ साथ पदों में पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद की व्यंजना भी मिलती है। गोपी रुप जीवों के द्वारा प्रेम लक्षणा भक्ति द्वारा भगवद प्राप्ति मानी गई है। कृष्ण परमात्मा है और गोपी आत्मा है अतः लौकिक विषय की दृष्टि से इनकी शृंगार

रसात्मक पदों का आकलन नहीं करना चाहिये। परम तत्व में लीन हो परमात्मा की अनुभूति जिस प्रकार दाम्पत्य रुप श्रृंगार रस के वर्णन से होती है वैसी सरस तन्मयता, तदाकारता अन्य रसो से विशिष्ट मानी गई है। संसार आसक्ति से छुटकारा पाने के लिए भगवद् आसक्ति, व्यसनदशा श्रृंगार रसात्मक पदों की लीला गुण गान से सुगम है। श्रीकृष्ण की प्रेम मयी मूर्ति को लेकर प्रेम तत्व का विस्तार से वर्णन किया है– प्रौढ़ा नायिका का प्रेम सर्वोत्कृष्ट माना है। इसमें अनुशक्ति एवं आत्म निवेदन जो ब्रह्म संबंध–पुष्टि मार्ग की दीक्षा का मूल मंत्र हैं इसी भित्ति पर सूरदासजी ने लीलागुण गान किया है। श्रीमद् भागवत में महाप्रभुजी ने दशम स्कन्ध को निरोध–लीला माना है।

"प्रपंच– विस्मृति पूर्वक, भगवद् आसक्ति सः निरोध।" भागवत की श्रीसुबोधिनी टीका में महाप्रभुजी स्पष्ट आज्ञा करते हैं कि– प्रपंच की विस्मृति हो और भगवान् में चित्त वृत्तियों की आसक्ति हो जाना ही फल दशा है जो सूरदासजी को श्रृंगार रस के पदो के गायन से प्राप्त हो गई। "द्वारकेश" निरोध मांगे यही फल की आस है। पुष्टि मार्गीय पद्दति से गुणगान से ही फलरुप निरोध अवस्था प्राप्त होती है। यह निरोध लक्षण ग्रन्थ में महाप्रभुजी ने स्पष्ट वर्णन किया है।

सूरदासजी पर कृपा कर निरोध अवस्था –फल दशा तक पहुँचाने के लिए ही भगवद् लीला गुणगान की ओर प्रेरित किया जो मानव जीवन की सार्थकता है कान्ता सक्ति, विरह आसक्ति सभी का समावेश है। दार्शनिक और काव्यगत विवेचन भी मिलता है। सूरदासजी ब्रजभाषा साहित्य के अमर कवि है। स्वर ताल लय से आबद्ध शब्दों की रमणीयता आज भी श्रोताओं के जीवन में सरसता का संचार होता है। रसावयवों की अनिवार्य योजना प्राप्त होती है, नाद सौंदर्य के अनुरुप हो जाती है। प्रेम लीला के चित्र श्रृंगार रस की कविता का प्रधान विषय है।

मंगला के दर्शन में सूरदासजी के विविध श्रृंगार रस के आयामों से एक आयाम निम्न प्रकार भी है। दाम्पत्य केलि के उपरान्त प्रातः काल श्रृंगार रसात्मक काव्य राग राम कली–

उर भयो नीलाम्बर पीताम्बर महियाँ।
कुंडल सों लर लट वेसर सों पीत पट हार ही में बनमाला वैहियाँ में बहियाँ।
हंस गति अति छवि, अंग अंग रही फवि, उपमा अवलोकवे कूँ पटतर नहियाँ।।
काम के कलोल छूटे सेज हू के सुख लूटे 'सूर' प्रभु विलसत कदम्ब की छैयाँ।

इसमें सुरति केलि की भावना श्रृंगार रस युक्त परिलक्षित होती है। "<u>काम के कलोल</u>" इस प्रकार अलौकिक काम की व्याख्या महाप्रभु–वल्लभाचार्यजी ने भागवत की रास पंचाध्यायी टीका में व्याख्या निम्न प्रकार से की हैं– "क्रिया सर्वापि सैव अत्र, परं कामो न विद्यते" क्रिया तो सभी लौकिक प्रकार की है परन्तु वास्तव में लौकिक विषयभोग

काम की गन्ध भी नहीं है। परब्रह्म में वह होभी किस प्रकार सकती है वैसे जब ब्रह्म अवतार धारण कर भूतल पर प्रगट होता तो लोक वत ही लीला करता है यह व्यास सूत्र से प्रमाणित है।

''लोकवत्तु लीला कैवल्यम्'' यह प्रमाण है।

श्रीराधिकाजी सुरति केलि के पश्चात् श्याम सुन्दर भगवान् कृष्ण की ओर देख कर मुस्कराती है।

पद– राधिका श्याम तन देख मुसकानी।
हरि बिनु गुन, लेख, अधर अंजन रेख, नयन तंबोल तुतरात बानी।
पाग लट पटी बनी, उर की छूटी तनी, अंग की गति देख जिय में लजानी।
उपट कंकन पीठ, वक्र वहल दीठ, ईश की ईशता लखी छानी।
पाणि पल्लव अधर दशन से गहि रही मधुर वचन बोल जिय हार मानी।
सूर प्रभु प्राण पति, अंक भर नागरी, नकल नोगर उरे घात।

इस भजनानन्द रस की तुलना में सूरदासजी ब्रह्मानन्द मुक्ति को भी तुच्छ और खारी स्वाद की मानते है– यह भगवद् रस कृपा साध्य है।

पद–बनी सहज लूट हरि–केलि की सुपने यह कृपा कमला न पावे।
सूर गिरिधरन मधु चरित्र मधु पान के और अमृत कछु आन लागे।
और सुख रंक की कौन इच्छा करे, मुक्ति हू लौन सी खारी लागे।

खण्डिता नायिका के भावो से भावित सूरदासजी लीला मध्य पाती के रुप में–
अरुझ रहे मुक्ताहल निरवारत, सोहत घूँघर वारे बार।
रति मानी संग नन्द नन्दन के छूटे बन्द कंचुकी के, टूटे तार।।
निशि के जागे दोऊ नयना, ढरक रहे चलत यौवन मार।
सूर श्याम यह सुख देखत, रीझे बारं बार।

"यह सुख देखत" जो देख्यो सो गायो" प्रमाणित होता है ठाकुरजी एक गोपी से कह गये, रात कूँ तेरे घर आवेंगे, परन्तु न पधारे– ताते वाके सब मनोरथ खण्डित भये, भोर भये पधारे–

पद–भली कीनी भोर आये मेरे अंगना,
अरुण उनीदे नयना, आलस वलित बैना, कुमुदनी चित्त चोरयो बस्यो चन्द गगना
अधरन रंग नीको, काजर, कपोल पीक, यावक ललाट लीक कहत गोपी लगना।
भुजन बंदन फबी, कूच हार मुद्रिका ठबी, नख रेख छाती छबि पीठ गढ्यो कंगना।
सूरदास श्री गोपाल सुरति समय अति विहाल, ताही पै सिधारो लाल जहाँ मन लगना।

परब्रह्म से कौन इस प्रकार कह सकता हैं सिवाय उनके जिनको प्रेम लक्षणा भक्ति सिद्ध हो गई हो। इस प्रकार मकर संक्रान्ति के पद में श्रृंगार रस का कितना रोचक वर्णन है– भगवान् गेंद खेल रहे है– इसी बहाने गोपी के घर पधारते है और कहते हैं–

तें ग्वालिन मेरी गेंद चुराई।
खेलत आन परी पलका पर, अंगिया माँझ दुराई।
भुज पकरत मेरी अंगिया टटोरत, छुवत हो छतियाँ पराई।
खेलत आन परी पलका पर, अँगियां माँझ दुराई।
'सूरदास' प्रभु यही अचम्भो, एक गई द्वै पाई।

महाप्रभुजी ने ब्रह्म का स्वरुप विरुद्ध धर्माश्रय माना है। नन्दालय में बाल लीला करते है और उसी क्षण निकुँज में किशोर लीला– एक काला वच्छन्न अनेक लीलाऐं करते हैं। होरी लीला वर्णन में इसी से सैद्धान्तिक पक्ष को परिलक्षित किया है। राग काफी– गोपी उराहने के मिस नन्दालय में पधारती हैं।

बरजो यशोदाजू कान्हा।

हौं यमुना जल भरन जात ही, मारग निकस्यो आना।

बरजत ही मेरी गागर फोरी, लै अबीर मुखसाना सखी सब देत हैं ताना।

यशोदाजी यह सुन कर चकित हो जाती हैं और उत्तर देती है कि–

मेरो लाल पलना में झूलत बालक है नादाना

यह कहा जाने रस की बतियाँ, कहा जाने खेल जहाँना कहा तुम भूली हो ज्ञाना।

गोपी वचन–

तुम साँची तुम्हारो सुत साँचो, हम ही करत बहाना,

'सूरदास' ब्रज बास त्याग के, अनंत कहूँ नहीं जाना, करो अपनो मनमाना।

श्रीमद् भागवत के अनुसार भगवान्, श्रीकृष्ण की ब्रज लीला 11 वर्ष 52 दिन तक की ही है– ''कौमारं जहतु ब्रजे'' इस भागवत के श्लोक से यह प्रमाणित है। बाल अवस्था, कुमार अवस्था को धारण करते हुए किशोर पौगण्ड आदि अवस्था की लीलाएँ करना ही ब्रह्म का विरुद्ध धर्माश्रयी स्वरुप है।

रथयात्रा का राग अडाना में एक पद–

सुन्दर बदन री सुख सदन श्याम को निरखि नैन मन थाक्यो हौं। ठाड़ी बीथिन ह्वै निकस्यो उझकि झरोखन झाँक्यो।

लालन एक चतुराई कीनी, गेंद उछार गगन मिस ताक्यो।

बैरिन लाज भई री मोकूँ, मैं गँवार, मुख ढाक्यो।

चितवन में कछु कर गयो मो तन, चढ्योरहत चित चाक्यो,

'सूरदास' प्रभु सर्वस लैकै' हँसत हँसत रथ हाँक्यो।

मान लीला में भी श्रृंगार रस की अद्भुत व्यंजना है। मान सागर के अन्त में सूरदासजी लिखते है– श्रीराधा कृष्ण केलि कौतुहल जो गावे जेहि भावे हो।

बहुरि न बसे गर्भ पातक में और अभय पद पावे हो।

ताके सदाँ समीप बसे हरि, उर आनन्द बढावे हो।

जीवन मुक्त सूर के प्रभु की, अनुदिन लीला गावे हो।

मर कर मुक्ति किसने देखी है।

जीते जी मुक्ति प्राप्त करना, यह राधा कृष्ण की रसात्मक लीलाओ के यशोगान से सुलभ है।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

दुहरे मनोरथकर्ता गो. ति. श्री दाऊजी दामोदरजी (द्वितीय)

–दयाशंकर पालीवाल

रसज्ञ रंजन भगवान् श्रीकृष्णचंद्र की यह श्रीनाथ नगरी पुष्टिमार्ग की प्रधानपीठ अहर्निश उल्लास और आनन्द से परिपूरित है। यहां 'निसदिन पून्यो' ही हैं। वल्लभ संम्प्रदाय के उत्सवों का आयोजन श्रीजी मन्दिर में होता ही रहता है। पुष्टिमार्ग पत्रिका के विगत त्रैमासिक समय तनिक विशेषाधिक उत्सवों का रहा है। जिनमे से आश्विन कृष्णपक्ष की अष्टमी दि. 1 अक्टूम्बर को श्रीमहाप्रभुजी के ज्येष्ठ पुत्र श्रीगोपीनाथजी के पुत्र श्रीपुरूषोत्तमजी का और द्वादशी दि. 5 अक्टूम्बर को स्वयं श्रीगोपीनाथजी का तथा त्रयोदशी दि. 6 अक्टूम्बर को श्रीगुसांईजी के तीसरेलालजी श्रीबालकृष्णजी का उत्सव हुआ। आश्विन शुक्लपक्ष की चतुर्थी दि. 11 अक्टूम्बर को श्रीदामोदरजी (श्रीदाऊजी) महाराज का (दुहेरा मनोरथ) उत्सव हुआ। जबकि नवमी दि. 16 को विजय दशमी का, दशम दि. 17 को गुसांईजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरधरजी के प्रथमलालजी श्रीमुरलीधरजी का, त्रयोदशी दि. 20 को श्रीबालकृष्णजी का पाटोत्सव और पूर्णिमा दि. 22 को शरद पूर्णिमा (रासोत्सव) हुआ। कार्तिक कृष्णपक्ष त्रयोदशी दि. 4 नवम्बर को धनतेरस, चतुर्दशी दि. 5 को रूप चतुर्दशी, दीपोत्सव, हटड़ी और अमावस्या दि. 6 को गोवर्द्धनपूजा, अन्नकूटोत्सव हुआ। कार्तिक शुक्लपक्ष की सप्तमी दि. 13 को गो. ति. श्री 108 श्री इन्द्रदमनजी (श्रीराकेशजी) महाराजकृत, श्रीनवनीत प्रिय प्रभु को व्रज में पधरायवे का विशेष उत्सव और अष्टमी दि. 14 को गोपाष्टमी, 17 को प्रबोधिनी एकादशी, 18 को श्रीगुसांईजी के प्रथम लालजी श्रीगिरिधरजी व पंचमलालजी श्रीरघुनाथजी का, 20 को ति. श्रीगोविन्दजी महाराज का और 21 पूर्णिमा को गो. ति. श्रीगोविन्दलालजी महाराजकृत चार स्वरूप का उत्सव हुआ। मार्गशीर्ष चतुर्थी दि. 25 नवम्बर को तिलकायित श्रीदाऊजी महाराजकृत छः स्वरूप का और सप्तमी दि. 28 को गो. ति. 108 श्री गोविन्दलालजी महाराज श्री का उत्सव हुआ। द्वादशी दि. 2 दिसम्बर

को गो. ति. 108 श्री इन्द्रदमनजी (श्रीराकेशजी) महाराजकृत श्रीनवनीत प्रिय प्रभु को व्रज यात्रा से पुनः नाथद्वारा निज मन्दिर में पधरायवे को और 3 दिसम्बर को श्रीगुसांईजी के सातवें लालजी श्रीघनश्यामजी का उत्सव हुआ। मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष की पंचमी दि. 10 को श्रीमदनमोहनजी का पाटोत्सव, सप्तमी दि. 12 को श्रीगुसांईजी के चतुर्थलालजी श्रीगोकुलनाथजी का, अष्टमी दि. 13 को श्रीगोवर्द्धनेशजी महाराजकृत सात स्वरूप का और पूर्णिमा दि. 21 को छप्पनभोग बलदेवजी का उत्सव हुआ। पौष कृष्ण पक्ष की एकम् दि. 22 को नित्य लीलास्थ गो. ति. श्रीदाऊजी (राजीवजी) महाराज का, सप्तमी दि. 27 को श्रीगुसांईजी के ज्येष्ठ पौत्र श्रीगोविन्दजी के पुत्र श्रीकल्याणरायजी और नवमी दि. 29 दिसम्बर को श्रीमत्प्रभुचरण श्रीविट्ठलनाथजी (श्रीगुसांईजी) का उत्सव हुआ।

परम भागवत दिव्य उत्सवकर्ता गो. ति. श्रीदाऊजी दामोदरजी (द्वितीय) पर उनकी दादीजी श्रीपद्मावतीजी का अत्यधिक वात्सल्य भाव एवं असीम कृपा रही जिनकी सद्प्रेरणा से चार स्वरूपों को पधराकर स्वरूपोत्सव किया। आपका प्राकट्य आश्विन शुक्ल 4 वि. सं. 1853 और लीला प्रवेश फाल्गुन कृष्ण 30 वि. सं. 1882 को हुआ। आप वि. सं. 1863 में तिलकायत बने। आपने वि. सं. 1877 से 1878 तक बारह मासों के दुहरे मनोरथ किये। आपने 6 स्वरूपों का उत्सव भी किया। आपने नवनीत प्रिय को तीन तिबारी बनास नदी पर व लालबाग में पधराकर भव्य मनोरथ किये। आपने अपने पिताश्री के अवशिष्ट कार्य– गिरधर सागर बंधवाया, बडा बाग, बड़ा बाजार, लालबाग मथुरा दरवाजा, रामभोला, जरखण्डी–बरखण्डी बनवाये। नगर का परकोटा खिंचवाया। आपश्री को ''दुहरे मनोरथकर्ता गो. ति. श्री दाऊजी दामोदरजी (द्वितीय)'' के रूप में श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाता है।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

पुष्टि–प्रेम–निरूपण

प्रो. श्रीललितशंकर शर्मा, उदयपुर (काव्यखण्ड से साभार)

प्रेम का शासन अनादि प्रेम रस महाराज है।
प्रेम ही निज रूप सबका प्रेम ही सरताज है।।
प्रेम की सुरभि अलौकिक प्रेम जीवन पुष्प है।
प्रेम ही उपहार प्रभु का भाव रस से पुष्ट है।।
प्रेम से ही बोध होता उर में छिपे भगवान का।।
दृष्टि दे यह प्रकट करता मर्म गीता ज्ञान का।।
प्रेम की महिमा बड़ी साधन नहीं ये नेम का।
पुष्टिवर्द्धन नित पिलाता, दिव्य अमृत प्रेम का।।

भावार्थ :– अहंकार के आधार पर स्थापित किया गया शासन अस्थायी होता है किन्तु प्रेम का शासन अनादि एवं शाश्वत है। प्रेम का रस ही अन्य सभी रसो से उत्कृष्ट है। परमात्मा प्रेमस्वरूप है एवं सभी आत्माओं पर प्रेम से ही शासन करता है। सभी आत्माएँ भी प्रेम स्वरूप ही है। इसीलिए प्रेम से ही शासित होती है। प्रेम की सुगन्धि दिव्य हैं इसमें असख्य सद्भावों की सुवास भरी हुई है। प्रेम से ही जीवन कमल का विकास होता है अर्थात् प्रेम ही मनुष्य की जीवन शक्ति है। प्रेम तो एक ऐसा उपहार है जो परमात्मा की ओर से मनुष्य को प्रदान किया गया है। यह प्रेम रूपी उपहार भावना के दिव्य रस से पुष्ट है।

प्रेम के द्वारा ही मनुष्य को अपने हृदय में छिपे हुऐ अन्तर्यामी भगवान् का अनुभव होता है। प्रेम ही वह दिव्य दृष्टि प्रदान करता है, जिसके आलोक में भगवान् द्वारा उपदिष्ट गीता का वास्तविक मर्म जानने में आता है, अर्थात् प्रेम के अभाव में भगवान् के स्वरूप का एवं उनके उपदेश का मर्म नहीं जाना जा सकता। प्रेम की महिमा अपरम्पार है। प्रेम किसी नियम द्वारा नहीं साधा जा सकता अर्थात् प्रेम नियम से परे है। पुष्टिवर्द्धन–स्वरूप परमात्मा स्वयं ही प्रेम स्वरूप है अतः वह अपने भक्तजन को सदैव प्रेम के दिव्यामृत का रसास्वादन कराता रहता है।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय में वैदिक सिद्धान्त प्रतिपादन

—पं. श्री विष्णुदत्त पुरोहित

वेदाः श्रीकृष्ण वाक्यानि व्यास सूत्राणि चैव हि।
समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुस्टयम्।।
(तत्वदीप निबन्ध)

वेद की संहिता, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक व उपनिषदें ये सभी श्रुति, निगम या वेद है। वेदों की दुरूह क्लिष्ट व्याख्याओं का ज्ञान आलोकित करने वाला ज्ञान—काण्ड उपनिषदों में संग्रहीत है। उपनिषदों के ज्ञान की व्याख्या मीमांसा के रूप में प्रकट है। उत्तरमीमांसा को भगवान् व्यास ने 'ब्रह्मसूत्र' नाम से प्रकट किया है जिसे कालान्तर में द्वैत—अद्वैत सिद्धान्तों को आचार्यो ने अपने अपने सिद्धान्त की पुष्टि हेतु एवं इनको सिद्ध करने हेतु टीकाएं की।

आचार्यचरण ने इसी ब्रह्मसूत्र के अणुभाष्य के रूप में टीका की है। इसके भिन्न आचार्यचरण ने 'वेदवल्लभ' नामक ग्रन्थ की रचना भी की है जिसका 'बर्लिन' के वाचानालय में होना ज्ञात होता है।

वेद की प्रतिपाद्यता आचार्यचरण के सर्वनिर्णय निबन्ध में निम्न कारिका से भी स्पष्ट होता है—

"ये धातु शब्दायत्रार्थे उपदेशे प्रकीर्तिताः।
तथैवार्थी वेदराशेः कर्तव्यो नान्यथा क्वचित्।।"

शुद्धाद्वैत सिद्धान्त प्रमाण चातुष्टय से निष्पन्न प्रमेय रूप शुद्धाद्वैत आम्नाय में वेद अथवा उपनिषद् पर आचार्यो ने मंगलाचरण में ही निगम (वेद) रूपी कल्पवृक्ष के रसात्मक फलरूपी भक्ति भाव से प्राप्त रस का संचार कर निरोधित करने वाले प्रभु को नमस्कार किया है।

यही सर्वात्म भाव जिस भक्त में सिद्ध हो जाता है उस भक्त में अगाध लीला सागर का उद्भव हो जाता है एवं उसी के हृदय में प्रभु का वास हो जाता है। इस रस के संचरण से वह भक्त निश्चिन्त हो जाता है— ब्रह्मसंबंध प्रकरण में आचार्यो की यह आज्ञा विख्यात है—

अज्ञानादथवा ज्ञानात्कृतमात्म निवेदनम्।
यैः कृष्णसात् कृत प्राणैस्तेषां का परिवेदना।।

अर्थात्— जाने अंजाने में प्रभु को, हो गया जो आत्म निवेदित हो। प्रभु में सम्प्रक्त प्राण करके, फिर क्यों वह प्राणी चिन्तित हो।।

उक्त भक्तिरूपी फल से प्राप्त रस में सराबोर हुए भक्त को अन्य कोई चिन्ता करनी ही नहीं चाहिये।

रस वह जो संस्त्रवित हो। बहे। जो वस्तु बहकर दूसरे में चली जाय।

रसति–स्रंवति इति रसः

बहना ही रस का सामान्य लक्षण है। किन्तु बहना निम्न धरातल पर है।

''रसःसंस्रवः''

रस अनन्त है व निम्न भाव को देख कर बहता है। निम्नता के आकर्षण से ही बहता है। वही आकर्षण है। जैसे साम का सूर्य में, हवि का अग्नि में, सत्ता का ज्ञान (चेतना) में बहना ही आनन्द उत्पन्न करता है। ये सभी संस्रवित होकर परमानन्द के उद्गम बन रहे हैं। इसीलिये कहा है रसो वै सः (तैत्तरियोपनिषद्)

यही ग्रहण करने पर मधुरता प्रदान करते हैं। अन्य आर्ष साहित्य भी पुरूषार्थो का निरूपण करते है। लेकिन उल्लास की पूर्ति के लिये ब्रह्म की रसमय लीला ही आह्लाद प्रदान करती हैं। इसी को इंगित करने हेतु भागवत की समाधि भाषा का लेखन देवर्षि की प्रेरणा से चिन्तातुर भगवान् व्यास के शौच के निवारण हेतु रचित करवाया। इसी समाधि भाषा के रसमय रसालयम् को प्रमाण रूप से प्रतिपादित कर प्रमाण चातुष्टय को मान्य किया। किन्तु वेद के अतिरिक्त कोई भी सिद्धान्त प्रमाणिक नहीं होता। स्वतःप्रमाण वेद ही शास्त्र है। शास्त्र वही हैं जो सन्देह का निवारण करें। इसीलिये चारों प्रमाणों का निगम प्रतिपाद्य ही माना जाता है।

आचार्य चरण ने शब्द को ही प्रमाण माना है। 'तत्वदीप निबन्ध में' ''शब्द एव प्रमाणम्''। किन्तु ये शब्द आप्त पुरूषों से सम्बन्धित ही होने चाहिये। सांसारिक लोगों के शब्दों से संबंधित नहीं हैं। अतः उपनिषद में कहे हुए सर्वात्म भाव के अनन्तर उससे पुष्टिमार्गीय फलात्मक दास्य भाव की प्राप्ति होती है।

यही सर्वात्मभाव ब्रह्मसंबंध का फल है व रस संचार का स्त्रोत है। आचार्यचरण ने वेद व उपनिषदों व ब्रह्म सूत्र को एक कोटि में तथा गीता व भागवत को दूसरी में रखा। कुछ भी हो गीता व वेद का उद्गम श्रीमुख या श्वास से होकर एक ही है। केवल ग्रहण करने वाले सप्तर्षियों के स्थान पर क्षत्रिय द्वारा सुने गये प्रवचन युद्ध क्षेत्र में ग्रहण किये गये हैं ऐसा हो सकता है। किन्तु ये चारों है प्रमाण ही। क्योंकि–

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नन्दन।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतम महत्।।

वेद पर समय समय पर ब्रह्मसूत्र के अणुभाष्य के अतिरिक्त पश्चातवर्ती गुसांई बालकों व विद्वानों ने उपनिषदों पर व्याख्याएं भी की है। श्रीमद् विट्ठलेश प्रभुचरण ने विद्वन्मण्डल तथा अन्य कृतियों, टीकाओं में और आचार्यचरण के ग्रन्थों को पूर्ण करने की प्रक्रिया में प्रसंगोपात श्रुतियों के रहस्य का उद्घाटन किया है।

अन्य विद्वानों में श्री गोकुलनाथजी, कृष्णचन्द्रजी, पुरूषोत्तमजी, महाप्रभु हरिरायजी, योगीराज गोपेश्वरजी, श्री गिरधरजी, श्री मुरलीधरजी, श्री लालूभट्टजी, श्री निर्भयरामजी, श्री इच्छारामजी, श्री गट्टूलालाजी के अतिरिक्त श्री गोपेश्वरजी ने यजुर्वेदनवार्थी भाष्य लिखा और उपनिषदों पर स्वतन्त्र विवेचना की। उन्होंने श्री पुरूषोत्तमजी के ''भाष्य प्रकाश'' व ''रस्मि'' को भी ग्राह्य किया। श्री गिरिधरजी (काशिस्थ) के ''श्रुतिरहस्य'' रचना में भी शुद्धाद्वैत प्रतिपादित किया गया है। इसी क्रम में प्रातः स्मर्णीय नित्य लीलास्थ गो. श्री दामोदरलालजी महाराज ने तत्कालीन वैदिक व सनातन धर्मी आचार्यो व विद्वानों में शास्त्रार्थ कर पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय को निगम प्रतिपाद्य होना सिद्ध कर शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त की।

गत शताब्दि में भी इशावास्योपनिषद्, केनोपनिषद्, कठोपनिषद् और छान्दोग्योपनिषद् आदि वैदिक ग्रन्थों पर श्री बालकृष्णजी, श्री बलभद्रजी, श्री मोहनलालजी, श्री कण्ठमणीजी, श्री शबलकिशोरजी, मुखिया गोकुलदासजी, श्री गट्टूलालाजी, श्री रमानाथजी शास्त्री ने लेखन व प्रकाशन किया। ब्रह्मसूत्र भाष्य (अणुभाष्य) सहित कई श्रोत ग्रन्थ श्री मूलचन्द तुलसीदास तेलीवाला, जेठालाल गोवर्द्धन शाह ने गुजराती में व श्री मानधना जोधपुर के सहयोग से श्री रामचन्द्रजी पं. नारायणजी त्रिपाठी आदि ने टीकाये लिखी व प्रकाशित की है।

इस प्रकार श्रुति परम्परा में प्रमाण चातुष्टय को सिद्ध कर आचार्य चरण ने भक्तिमार्ग में भजन (सेवा) से ही स्वरूप लक्षण और तटस्थ लक्षण (मन को भगवान् में लीन करना, व शेष अभिलाषाओं को छोड़ देना) दोनों लक्षण सिद्ध किये है जैसा कि श्रुति में कहा भी गया है–

''भक्तिरस्यभजनं तदिहामुत्रोपाधिनैराश्यै युष्मिन् मनः कल्पनमितिश्रुति''।।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

"लाड़िलो छाक खात बन मांहि।"

–श्रीहरिनारायण नीमा, उज्जैन

परमहंसो की संहिता श्रीमद्भागवत महापुराण में श्रीशुकदेव महामुनि अनंत कोटि ब्रह्मांड नायक परात्पर परब्रह्म परमात्मा भगवान् नंदनंदन श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंद की बालकेलि का रसिक भक्तों को अमृत रसपान कराते हुए कहते हैं :–

"दध्योदनं समानीतं शिलायां सलिलान्त के।

सम्भोजनीयैर्बुभुजे गोपैः संकर्षणान्वितः।।"

पांच वर्ष के सुकुमार लाड़िले कन्हैया अपने बड़े भैया बलरामजी और गोप सखाओं के साथ दधिओदन (दहीभात) प्रकृति के रमणीय वातावरण में सविनोद अरोग रहे हैं। लालन की इस शाश्वत लीला का उल्लेख श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्ता में इस प्रकार मिलता है– "एक दिन श्रीजी गोपालदास को आज्ञा किये जो हम अप्सराकुण्ड ऊपर हैं। गुसांईजी सों जायके कहियो, हम श्यामढाक तरे हैं, तुम दही भात सिद्ध करिं 'छाक' लैकें बेगि पधारो। हम कू भूख लगी है। गोपालदास ने जाय के विनती करी आप गुसाँईजी अपरस में छाक सिद्ध करि श्याम ढाक पै पधारे। श्रीजी बलदेवजी सहित अरोगे।।"

प्रभु की आज्ञा को शिरोधार्य कर प्रभु चरण श्रीगुसाँईजी ने अपरस में सामग्री सिद्ध की और स्वयं छाक लेकर अप्सरा कुण्ड पर पधारे, श्रीनाथजी और दाऊ भैया बाल सखा सहित दधि ओदन अरोगे।

छाक प्रभु श्रीनाथजी की आज्ञा से हमारे पुष्टि भक्तिमार्ग में प्रारम्भ हुई, श्रीगुसाँईजी ने अपने पितृचरण श्रीमहाप्रभुजी द्वारा स्थापित सेवा की भावनाओं में बहुत विस्तार किया। नंदालय की भावनाओं से मंडित श्री वल्लभकुल की हवेलियों में श्रीगुसाँईजी के समय से आज तक श्रीठाकुरजी के छाक–मनोरथ होते हैं।

नव पुष्पित कदम्ब वन की छांव में, सदाबहार वटवृक्ष तले, श्रीयमुनाजी के तटस्थ नव कानन में, श्रीगिरिराज गोवर्धन की गोद में, सुरभि आदि गौओं के साथ में, दानघाटी पर, वृन्दावन मे नंद महरि के कुंवर नीलमणि माधव छाक आरोगते हैं।

शृंगारोपरांत ग्वाल बालों का सिंहद्वार पर जमघट होने लगता है। मातृचरण श्रीयशोदाजी अरवीले ब्रजेश की टेव को जानती हैं, अतःएव थाल में प्रात राश साज कर

आरोगाती हैं, कुछ आरोगते हैं, कुछ धरती पर गिराते हैं और दौड़ जाते हैं सखा मंडली के बीच।

'मां' का मन कहां मानता है, विविध सामग्री सिद्ध करके कावड़ में खेल के स्थान पर पहुँचाती है, कभी ग्वालों के साथ तो कभी ग्वालिनियों के हाथ।

छाकलीला पर आधारित पदों की रचना अष्टछापीय महानुभावी भक्तों ने की है, जिनका गान श्रीजी के सन्मुख मनोरथ में होता है।

श्रीगोविन्द स्वामी ने अपने अग्रांकित पद में श्रीनाथ प्रभु की प्रथम छाक आरोगने की आज्ञा के संदर्भ में सुन्दर वर्णन किया है, पद हैं–

"गोवर्धन गिरि श्रृंगसिलन पर, बैठे छाक खात दधि ओदन।
आसपास ब्रज बाल मण्डली मध्य वही बल मोहन बैठे।
छाकै खात प्रेम प्रमोदन, काहू को छींको लै नोय, छोर गहि डारत।
वह वापर, वह वापर कोदन। बाल केलि क्रीड़त गोविन्द प्रभु,
हँसि गिरि जात सुबल को गोदन।।"

नंद निकेतन से छाक स्थल दूर है अतः एव केल के पत्ते, कमल पत्र की पत्तलें तथा पलाश (खांकरा) के पत्तों के दोनों से छाक में काम चल जाता है। ब्रज की लता–पत्ता, वृक्ष–पत्र–पुष्पों की समानता रजत स्वर्ण मुक्ता से नहीं की जा सकती? वहां के जड़–चेतन सभी अलौकिक हैं? मैया के हाथ से बनी सामग्री सुस्वादु तो होती ही है; अनन्तगुणा भी हो जाती हैं, कभी कम नहीं पड़ती। सामग्री नित नवीन आती है, गिनती नहीं की जा सकती।

छांक हारी छप्पनभोग, छत्ती सों व्यंजन लाती हैं। मण्डल मध्य बिराजित गिरिधर की मधुर मुस्कान सबको मोहित करती है। श्रीछीतस्वामी रचित 'दहीभात' की छाक का पद है–

"भोजन करत नंदलाल, संग लिये ग्वाल बाल, करत हैं ख्याल बैठे बंसीवट छैयां।
पातल पर धरयो भात, दधि ओदन मिल्यो साथ,
मांगत मुसकात जात सांवरो कन्हैया।।
व्यंजन बहु भांत–भांत, अनुपम छवि कही न जात,
फेर हरख रूचि सों लेन जात मुदित पठहि मैया।

'छीत स्वामी' गिरिवर धर, मंडल मध्य बीच सोहे सबन को मन मोहे,

निरख निरख लेत हें बलैया।।"

'छाकलीला' के दर्शन और चिन्तन परम आनन्द प्रदाता हैं। छाक का प्रसाद मोल नहीं मिलता यह निर्मोल है। श्रीपरमानंददासजी के छाक आरोगने के पद की ये पंक्तियां मननीय हैं–

"सकल पाक परमानंद, आरोगत परमानंद,

परमानंद रोक करत, सुबल टेर टेर।।"

साक्षात् केलि कलामूर्ति श्रीबालकृष्ण प्रभु की सखामण्डली जब सदा मीठादधि अपने लिये मांगते हैं तब वे कहते हैः–

"जिन नहिं चाख्यो सुनो रे भैया, मेरी हथेरी चाट।'

पराकाष्ठा है गोपाललाल की गोप ग्वालों से प्रीत की।।

व्रजप्रिय, श्रीकृष्ण हार्दवित् श्रीमहाप्रभुजी की कृपा अथवा अनुग्रह से उस महाप्रसाद की कणिका तादृषी जनों को प्राप्त होती है, छाक का अधरामृत ब्रह्मादि देवताओं को भी दुर्लभ है। पक्षी बनकर आये तो प्रसाद का एक कण भी चुगने को नहीं मिला, जलचर बन कर आये तो बजाय 'अप्सरा कुण्ड' में हस्त प्रक्षालन के अपने अपने फेंटा से हाथ पोंछ लिये कवि कथन है–

"छाक सब खाय धाय जाय द्रुमन चढ़,

फेंटा मुख पोंछत अंगोछत है कर सों कर।।"

छाक लीला सर्वज्ञ प्रभु की परम प्रेममयी क्रीड़ा है, श्रीपरमानंददासजी ने संक्षिप्त किन्तु सार पूर्ण अभिमत इन पंक्तियों में प्रकट किया है–

"परमानंद स्वामी रस रीझे प्रेम पुंज को बांध्यो सेत।"

हमारे सम्प्रदाय के प्रधानपीठ श्रीनाथद्वारा में श्यामल किशोर प्रभु श्रीनाथजी के सन्मुख चैत्रकृष्ण द्वितिया से लगाकर कार्तिक शुक्ल अष्टमी तक राजभोग समय में छाक विषयक अठारह पदों का गान कीर्तनकार करते हैं। अठारह पदों को 'अठारह चोखला' कहा जाता है। अष्ट सखाओं के प्रतिनिधि आठ कीर्तनकारों की सांगीतिक समवेत वाणी से श्रीगोवर्द्धनधर रीझते हैं और दर्शनार्थी उस दिव्य लीला का रसपान करते हैं।

"सर्वेमिथो दर्शयन्तः स्व स्व भोज्य रूचिं पृथक।

हसन्तो हास्यन्तश्चाभ्य वजहुः सहेश्वराः।।" ।। श्रीमद्भागवत 10/13/10।।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

"ब्रज लीला हरि पुष्टि सौरव"

तीन लोक तारण तरण है तेरे आधीन

–सुश्री आशिता विद्यारत्न व्यास, मुम्बई

वेद कहते है कि एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। यही कथन स्वामिनीजी एवं श्रीप्रभु पर अक्षरशः सिद्ध होता है। वे दोनों दो तन होकर भी एक प्राण एक मन है! नादान है वे लोग जो इन अद्वैत युगल सरकार को द्वैत समझते हैं। श्रीराधिकाजी यदि देह है तो श्रीकृष्ण उसमें बसने वाले प्राण है। स्वामिनीजी तो श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति है। विद्वत्जनों ने कहा है कि जब प्रभु अक्रूर काका के साथ मथुरा के लिए निकल रहे थे तब स्वामिनीजी उनके सम्मुख आई, ठाकुरजी का समस्त धैर्य टूट गया। वे आकुल व्याकुल हो गये परन्तु स्वामिनीजी एक शब्द नहीं बोली अन्यथा वे रोकती तो क्या प्रभु नहीं रुकते? परन्तु वे ही तो ठाकुरजी को कर्म में प्रवृत करने वाली शक्ति है; वे उन्हे कर्म विलग कैसे करती? महान् मनीषीगण कहते है कि श्रीकृष्ण को जन्म लेने के क्षण से ही अद्‌भुत कर्म करने थे। उनकी लीलाओं के विस्तार के लिए ही स्वामिनीजी उनसे पहले अवतरित हुई।

समस्त ब्रह्मांड में कहीं भी कोई भी देव ऐसे देखने में नहीं आते जो अपनी संगिनी के चरण दबाते हो परन्तु निधी वन में आज भी ठाकुरजी स्वामिनीजी के चरणारविन्दों की सेवा करते हुए दर्शन देते है तो वही द्वारका में जब उन्हें उदर–पीड़ा हुई एवं रानियों, पटरानियों से उनकी चरण रज ठाकुरजी के पीड़ा शमन के लिए मांगी तो उन सभी ने मना कर दिया क्योंकि प्रियतम को रज देकर हम नरक में क्यों जाए? परन्तु स्वामिनीजी ने ज्ञात होते ही एक क्षण विलम्ब नहीं किया। उन्हें तो अपना प्रियतम सभी लोको से अधिक प्रिय है। ऐसा अद्वैत भाव निःसंदेह उस दिव्य अर्धनारीश्वर रुप का प्रतीक है जहा श्रीकृष्ण ही श्रीराधिका है और श्रीराधिका ही श्रीकृष्ण है। व्यासजी कहते है कि एक बार द्वारका में श्रीप्रभु के वक्षस्थल पर बडे–बडे फफोले एवं छाले उभर आए तब कोई कारण समझ में न आने पर रुक्मणीजी ने देश–देशान्तरों में अपने गुप्तचर भेजे कि कही किसी ने काला जादू तो नहीं कर डाला परन्तु कोई नतीजा नहीं निकला तब उन्होंने श्रीप्रभु से ही कारण जानना चाहा तब ठाकुरजी ने बताया कि चूल्हे से उबलता हुआ दूध उठाते समय राधिकाजी के पैर पर पतीली गिर गई; उन्हें फफोले हो गये तथा उनके चरण हमारे हृदय में बिराजते है अतैव हमें भी छाले पड़ गए। अर्थात् यहा द्वैत भाव है ही नहीं ना ही कोई भेद है! अपितु स्वामिनीजी ही ठाकुरजी की आह्लादिनी शक्ति है। वे ही उनकी स्वामिनीजी है। उनका नाम पुकारो ठाकुरजी स्वतः ही आ जाते हैं। वे तो श्रीराधा नाम आधीन है। तीन लोक तारण तरण सो तेरे आधीन.............

।। जय श्रीकृष्ण ।।

प्रथम मिलन

–श्रीप्यारेलाल पारीख, भीलवाड़ा

आज से लगभग 532 वर्ष अर्थात सम्वत् 1535 की वैशाख कृष्ण पक्ष ग्यारस के दिन श्रीठाकुरजी ने दया कर अपना माहात्म्य को अपने वचन द्वारा प्रकट करने की इच्छा से अपने मुखारविन्द स्वरूप को प्रकट किया अर्थात आचार्य चरण श्रीमहाप्रभुजी, श्रीमद्वल्लभाचार्यजी का प्राकट्य हुआ। आप श्री ने उस समय हमारे देश में हो रहे धर्म की दुर्दशा पर मन में खेद पाया एवं उनका प्राकट्य़ ही हम जैसे जीवों का उद्धार करने के लिए हुआ था। अतः आप श्री ने पुष्टि मार्ग को प्रकट किया। 14 वर्ष की अवस्था में तीसरी पृथ्वी परिक्रमा के दौरान आपको श्री ठाकुरजी ने आज्ञा की कि गोवर्धन में मैं नागदमन, इन्द्रदमन एवं देवदमन के नाम से प्रकट हुआ हूं। आप पधारे एवं मुझे पाट बिठाकर सेवा प्रकार स्थापित करें। आप श्री ने उसी स्थान पर यात्रा रख कर बृज की ओर प्रस्थान किया।

आपके साथ श्रीदामोदर दास हर्सानी (दमला), कृष्णदास मेघन आदि लोग थे। आप वहां से मथुरा पधारे एवं कुछ दिनों मथुरा में वास करने के पश्चात् आप श्री यमुनाजी के निरव किनारों पर सेवकों के साथ पधारे। (जिसे आज गोकुल कहा जाता है) आप श्री ने दामोदर दास को आज्ञा दी–"दमला, श्रीबालकृष्ण की यह बाल क्रीड़ा भूमि है। सारस्वतकल्प में इसी भूमि पर पूर्ण पुरूषोत्तम श्रीकृष्ण का प्राकट्य हुआ था।" यहां नंदालय में आपने मधुर बाल लीलाओं को किया था। दमला ने कहा कृपा नाथ यहां तो कहीं भी कोई गांव नजर नहीं आ रहा है, न कोई मनुष्य दिखाई दे रहे हैं। तब श्री ने कहा "दमला सारस्वत कल्प का गोकुल गांव तो लुप्त हो गया है लेकिन स्थान यही है।" आप श्री ने साथियों सहित यही मुकाम किया क्योंकि आप श्री जानते थे कि श्री श्यामसुन्दर श्रीयमुना महारानी के साक्षात् दर्शन होने है। रात्री में श्रीवल्लभ श्रीयमुनाजी के श्यामजल प्रवाह पर अपने नेत्र स्थिर कर दर्शन कर रहे थे उसी समय वहां दूर दूर से झांझरो की झंकार और कंकणों की टणकार सुनाई दी। सभी के कान उस दिशा की ओर उस मधुर आवाज को सुनने लग गये। क्षितिज पर श्रीयमुनाजी के जल प्रवाह पर धीर गम्भीर, सौम्य गजगति चाल से आती एक आकृति अस्पष्ट–सी नजर आयी। सबने उस दिशा की ओर अपने नेत्र स्थिर किये। कुछ ही समय में पास आती उस आकृति के दर्शन हुए, लाल सुथन, गुलाबी और लीले रंग की काछनी और

केशरी पट्टे में शोभित हो रही थी। श्रीमस्तष्क पर हीरा जटित मुकुट धारण किया हुआ था। श्रीअंग पर हीरे, माणिक और पन्ने के सौलह शृंगार शोभायमान हो रहे थे। एक श्रीहस्थ में कमल की छड़ी झुलती एवं दूसरे हस्थ में कमल के पुष्पों की नयन रम्य सुगन्धयुक्त पुष्प माला थी।

श्रीवल्लभ ने यह दर्शन कर अति प्रसन्नता अनुभव की। ह्रदय–प्रसन्नता से छलका सागर, नेत्रों द्वारा हर्षाश्रु बहने लगे, उसी समय आपके मुखारविन्द से धीर गम्भीर पृथ्वी छंद में स्तुति होने लगी।

''नमामि यमुना मह्म सकल सिद्धी हेतु मुदा''

श्रीयमुनाष्टक के धीरगम्भीर मधुर स्वर से वातावरण गुंजने लगा।

श्रीयमुनाजी श्रीवल्लभ के कुछ ओर पास आये तब आपने

''नमत् कृष्ण तुर्य प्रियाम''

यह कहकर आपको साष्टांग प्रणाम किया। श्रीयमुनाष्टक पूर्ण होते ही प्रसन्न हो मुक्तिरतीवर्धनी ऐसी श्रीयमुनाजी मन्दमन्द स्मित करते श्रीवल्लभ को निवेदन किया ''श्रीवल्लभ आपके दर्शन किये बहुत समय बीत गया, आज आप कृपा कर मेरे निकुंज के द्वार पधारे हैं। मै आपका स्वागत करती हूं।''

श्रीमहाप्रभुजी ने कहा श्रीयमुने आप परम कृपालु हो। शरण में आए हुए जीवों को देखकर आप बहुत प्रसन्न होती हैं लेकिन आपने यहां पधारने का परिश्रम क्यों किया?

तब श्रीयमुनाजी ने कहा ''श्रीवल्लभ आप साक्षात् मेरी निकुंज के द्वार पर पधारे हो और मैं आपका स्वागत करने नहीं आऊ यह कैसे हो सकता है। आपके मन में जो प्रश्न है। उसका जवाब दे सके ऐसा यहां कोई नहीं है इसलिए मै आपके पास दौडी आई हूं।''

श्रीयमुना महारानी ने अपने श्रीहस्थ में झूलती माला श्रीवल्लभ को पहनायी और आज्ञा की ''आप जिस भूमि पर खड़े हैं वह <u>गोविन्दघाट</u> है और पास ही ठकुरानी घाट है। दोनों घाट की सीमा पर खड़ा यह छोकर का वृक्ष ब्रह्म स्वरूप है। इस कारण इसे <u>ब्रह्म छोकर</u> के नाम से पुकारते हैं। आप कृपा कर इस वृक्ष के नीचे विश्राम कर श्रीमद् भागवत का पारायण करें।'' वह दिन श्रावण सुदी तीज का था, उसी दिन से इसे ठकुरानी तीज के नाम से महोत्सव के रूप में मनाया जाता है।

यही पर श्रीमहाप्रभुजी ने सात दिन तक श्रीमद् भागवत का पारायण किया। श्रावण सुदी दशमी को संध्या काल में श्रीवल्लभ ने श्रीमद् भागवत की पूर्णाहुति की।

श्रावण सुदी एकादशी का शुभ दिन आया। श्रीवल्लभ पूर्णिमा के दिन यज्ञोपवित्र बदलने और उसकी वैदिक विधि के लिए सूत के 360 तार का पवित्रा सिद्ध किया। केशर के रंग से रंगा। आज आपके हृदय में एक विचार घूम रहा था प्रभु ने अपने देवी जीवों के उद्धार के लिए मुझे भूतल पर प्रकट होने की आज्ञा दी थी। प्रभु का मनोरथ पूर्ण करने के लिए मैं भूतल पर आया हूं, पर जीव, जगत में सिर्फ मौजमस्ती में जीवन व्यतित कर रहे हैं। जीवों का उद्धार कैसे होगा? आज सदा प्रसन्न रहने वाले श्रीवल्लभ के मुखारविन्द पर चिन्ता की रेखाएं नजर आ रही थी। दिन पूरा हुआ रात्रि आयी आप श्री गोविन्द घाट पर छोकर के वृक्ष के नीचे सो रहे थे। पास ही कुछ दूरी पर दमला सो रहा था। आपको नींद नहीं आ रही थी। आपके मुखारविन्द से अनुष्टुप छंद में धीर व गम्भीर वाणी से यह श्लोक उच्चारित होने लगे।

''सर्व मार्ग नष्टेषु कलोचरवल धर्मिनी पाखण्ड प्रचुरे लोके कृष्ण एव गतिर्मम''

आठ श्लोकों में श्रीकृष्ण शरण के लिए आपने विनती की। रात्रि बढ़ती जा रही थी चन्द्रमा आकाश के मध्य में आ गया था। मध्य रात्रि हो गयी थी। श्रीयमुनाजी का जल भी थम गया था। श्रीमहाप्रभु श्रीवल्लभ को श्रीयमुनाजी के तट प्रदेश पर अपने सम्मुख अलौकिक प्रकाश का बड़ा पुंज दिखा। आपश्री उसी समय उठ खडे हुए। आपके नेत्र अन्धकार में थे उन्हें स्थिर और साफ किया। प्रकाश के उस तेज पुंज की ओर दृष्टि स्थिर की। आप श्री उस दिशा की ओर आगे बढ़े। तेज पुंज के पास आते ही आपके मुखारविन्द पर प्रसन्नता छा गयी। तेज पुंज के मध्य में श्रीश्याम सुन्दर खड़े थे। पीला पिताम्बर और पीला उपरणा धारण किये हुआ था। श्रीमस्तक पर बायी ओर झुकी हुई केशरी पाग थी। मोती की लटों से शोभित उस पाग में मयुर पुच्छ की चन्द्रिका शोभायमान लग रही थी। श्रीअंग पर षोड्स श्रृंगार धारण किये हुए था। मुखारविन्द पर मन्द मन्द स्मित हास्य था। श्रीहस्थ में आपकी प्यारी वेणु थी। श्रीवल्लभ ने वर्षो बाद श्रीनटवर प्रभु श्रीश्यामसुन्दर के दर्शन किये। नेत्र आनन्द से भर गये। दोनों हाथ जोड़कर श्याम सुन्दर के दर्शन किये और मस्तक नवाया और आपके सम्मुख खड़े रहे।

श्री कृष्ण ने अपने दोनों हस्थ आगे बढ़ाये और आलिंगन लेने के आतुर श्रीवल्लभ श्रीकृष्ण के आलिंगन में समा गये। वर्षो का विरहताप शांत हो गया। श्रीवल्लभ ने नन्द नन्दन के अलौकिक सुधारस का पान करते करते तोटक छन्द में अपनी स्तुति की।

''अधरं मधुरम्, वदनं मधुरम्, नयनं मधुरम्, हसितं मधुरम्,
हृदयं मधुरम्, गमनं मधुरम् मधुराधिपते रखिलं मधुरम्''

श्री वल्लभ ने श्रीकृष्ण के कपोल प्रदेश पर अपने कोमल हस्थ से स्पर्श करते करते विनती की कि प्रभु आपने इस मेघ से भरी रात्रि को यहाँ पधारने का श्रम क्यों किया?

श्रीठाकुरजी ने कहा कि श्रीवल्लभ आज मेरी आज्ञा को चरितार्थ करने में आप पूरे दिन सुचिन्तित रहे। देवी जीवों के उद्धार के लिए आप सही मार्ग नहीं जानते हैं ऐसी बात तो नहीं है फिर भी आपने स्वयं इसमें पहल नहीं की। अतः मैं प्रसन्न होकर आपके पास आया हूं। आप पुष्टिमार्ग को प्रकट करें एवं जिन देवी जीवों को आप शरण में लेकर मुझे सौपेंगे उन जीवों को मेरी अवश्य प्राप्ति होगी एवं मै उनको कभी नहीं छोडुंगा। जैसा कि अथसिद्धान्तरहस्यम् में श्री महाप्रभुजी ने कहा है।

श्रावण स्यामले पक्षे एकादशयां महानिशी।
साक्षात् भगवता प्रोक्तम् तदक्षरशः उच्यते।

अर्थात् श्रावण मास के शुल्ल पक्ष की एकादशी (पवित्रा एकादशी) की मध्यरात्रि में साक्षात् अर्थात् भगवान् श्रीगोवर्धनधरण ने प्रकट होकर जो कुछ कहा वह अक्षरशः मैं श्रीवल्लभाचार्य कहता हूं।

ब्रह्मसम्बंधकरणात्सर्वेषाम देह जीवयोंः।
सर्वदोष निवृतिहि दोषाः पंचविद्याः स्मृताः।

अर्थात ब्रह्मसम्बंध करने से देह और जीव सम्बंधी सर्व दोषों की अवश्य निवृति होती है।

आप श्री ने गोकलेश प्रभु को मिश्री आरोगाई और केशरी रंग से रंगे सूत की पवित्रा धरायी और प्रभु को प्रसन्न किया। श्रीगोकलेश प्रभु ने श्रीवल्लभ को आज्ञा की और श्रीकृष्ण ने पंचाक्षर मंत्र सहित गद्य मंत्र दिया और उसका रहस्य भी आपको बताया एवं अर्न्तध्यान हो गये। श्रीवल्लभ ने दमला से पूछा तुमने कुछ सुना। दमला ने कहा सुना तो सही पर समझा नहीं।

श्रावण सुदी द्वादशी को सवेरे श्रीमहाप्रभुजी ने दमला एवं कृष्णदास मेघन से कहा स्नान करके आओ। श्रीमहाप्रभुजी ने श्रीमुकन्दरायजी के सामने व आपके सामने बैठाये। आप श्री ने दोनों के हाथ में तुलसी दल दिया और आज्ञा की मुझे प्रभु ने कल जो आज्ञा की उस मंत्र की दीक्षा देता हूं। जैसे मै बोलु वैसा ही तुम उच्चारण करो। श्रीवल्लभ ने दोनों सेवकों को पंचाक्षर मंत्र सहित गद्य मंत्र का उच्चारण कराया और उनके हाथ से तुलसी दल ले श्रीमुकन्दरायजी के चरणों में समर्पित किया एवं प्रथम दोनों को ब्रह्मसम्बंध दिया। आप श्री ने आज्ञा की–दमला व मेघन तुम दोनों ने बहुत ही भक्ति भाव से मेरी

सेवा की है। अतः तुम्हे मानसी सेवा सिद्ध होगी। सम्वत् 1548 के श्रावण सुदी द्वादशी के मंगल दिन भक्ति नगर जैसा श्रीमद् गोकुल में गोविन्दघाट पर पुष्टिमार्ग का प्राकट्य हुआ।

व्रज में आगे यात्रा में आन्योर गांव आया यहां श्रीवल्लभ ने गिरिराजजी के दर्शन किये एवं दण्डोत की। सद्दूपाण्डे के चबूतरे पर बिराजे। श्रीवल्लभ ने दमला से कहा यहां हम एक विशिष्ट कार्य के लिए आए हैं। दक्षिण में जब हम यात्रा कर रहे थे तब झारखण्ड के प्रदेश में रात्रि विश्राम दर्मियान मुझे भगवत् आज्ञा हुई थी कि मै ब्रज में गिरिराजजी के उपर प्रकट हुआ हूं और आप वहां पधार कर मेरी सेवा प्रारम्भ करे। इस भगवत् आज्ञा की पालना करने हेतु हम यहाँ आए हैं। सद्दूपाण्डे और अन्य ब्रजवासी आपके पास आए और दण्डोत कर आपके रसोई आदि की व्यवस्था के लिए निवेदन किया। कृष्णदास मेघन ने कहा आप अपने सेवक के अलावा दूसरे किसी का भी कुछ स्वीकार नहीं करते हैं।

यह वार्ता चल रही थी कि वहां गिरिराजजी के शिखर पर से धीमा और मीठा स्वर सुनाई दिया "अरे नरो दूध लेकर आ मुझे बहुत भूख लगी है" सद्दूपाण्डे के घर से एक बारह–तेरह वर्ष की एक छोटी कन्या आयी और बडे प्रेम से ऊंचे स्वर में कहने लगी "वारी जाऊ महाराज अभी दूध लेकर आती हूं। आप जरा सब्र करों दूध लाने में विलम्ब हुआ है कारण कि घर में मेहमान आए हुए है इनकी जरा आवभगत कर लुं फिर आऊं"

श्रीठाकुरजी ने कहा "अरी नरो तुम्हारे मेहमान केवल तुम्हारे अकेले के नही है यह हमारे भी मेहमान है। तु सुखेन उनकी मेहमान बाजी कर लेकिन पहले मुझे दूध दे जा, मुझे बहुत भूख लगी है।" हम सब जानते है कि नरो ठाकुरजी को दूध अरोगा कर आई तब श्रीवल्लभ ने उसमे बचे शेष थोडे दूध को अरोगा। इसके पश्चात् श्रीवल्लभ ने सद्दूपाण्डे से प्रभु के प्राकट्य की बात विस्तार से जानी।

वैशाख सुदी तीज यानि अक्षय तृतीया को प्रातः सभी सेवकों सहित श्रीवल्लभ गोविन्दकुण्ड में स्नान कर सुन्दर धोती उपरना धारण कर संध्या वंदन कर सेवकों एवं व्रजवासियों सहित गिरिराजजी के उपर चढ़ने लगे। श्रीवल्लभ के मन में आया कि मै गिरिराजजी के उपर पैर कैसे रखु। हम सब जानते हैं श्रीगिरिराजजी ने प्रकट होकर आपश्री को उपर चढ़ने की आज्ञा दी और कहा आप सुखेन पधारे।

श्रीवल्लभ ने गिरिराजजी के शिखर उपर दृष्टि की तो श्रीनाथजी के दर्शन हुए। श्रीनाथजी ने पीला पिताम्बर धारण किया हुआ था। लाल उपरणा श्रीअंग पर शोभायमान

हो रहा था, मोती के आभूषण धारण कर रखे थे। विशाल उर प्रदेश पर मोती की माला सहित पुष्प मालाएं भी शोभायमान हो रही थी। श्रीहस्थ मे लाल लकुटी और वेणु धारण किये हुए थे, कुण्डल कर्ण प्रदेश में झूम रहे थे। मस्तक पर केशरी पाग बंधी हुई थी। बायी बाजु ढलती मोर चन्द्रिका मुखारविन्द की शोभा को और अधिक बढ़ा रही थी। दर्शन कर श्रीवल्लभ का वर्षों का विरह ताप आज दूर हो गया।

श्रीवल्लभ के मुखारविन्द से बहुत आनन्दपूर्वक शब्द निकले ''अधरं मधुरम्'' श्रीनाथजी दो पग नीचे पधारे श्रीवल्लभ ने मुखारविन्द के दर्शन करने के पश्चात् सहज रीति से शब्द निकल पडे ''वदनं मधुरम्'' श्रीवल्लभ ने तीसरा पग आगे किया और श्रीनाथजी इतनी ही उत्कण्ठा से तीसरा डग नीचे पधारे। श्रीवल्लभ ने चौथा डग आगे बढ़ाया। श्रीनाथजी एक डग नीचे पधारे। दोनों बिल्कुल नजदीक आये। दोनों स्वरूपों ने परस्पर अपलक दृष्टि से देखा और देखते समय मन्द स्मित में से खिलखिलाहट हास्य करने लगे। परस्पर के मुखारविन्द हास्य के सागर बन गये। श्रीवल्लभ के मुख से चौथा चरण निकल पड़ा ''हसितं मधुरम्'' श्रीनाथजी उत्सुकता से कूदते हुए एक चरण बढ़ाया और नीचे पधारे। श्रीवल्लभ के मुख से पांचवा चरण प्रकट हुआ ''गमनम् मधुरम्'' अब सिर्फ दो डग बाकी थे। श्रीनाथजी को ह्रदय से लगा लेने की तत्परता हो रही थी। विशाल वक्ष स्थल से आलिंगनबद्ध श्रीवल्लभ ने गाया ''ह्रदयं मधुरम्''। अब अन्तिम सातवें चरण श्रीवल्लभ ने श्रीगिरिराजजी की एक विशाल शिला पर रखा। श्रीनाथजी उस विशाल शिला पर कूद कर पधारे और दोनों स्वरूपों का एक ही शिला पर सुगम मिलन हुआ।

परस्पर गाढ भुजबंध में दोनों बंध गये। परस्पर के ह्रदय प्रदेश आलिंगन से जुड़ गये। अधरामृत का पान करते करते पूरे श्रीअंग के सब अवयवों के स्वरूप सुधा का अनुभव करते हुए, आनन्द के उच्छलखित महासागर की उंची मौजों में भींजते हुए, श्रीवल्लभ ने अपना मन उसी में लीन किया और गाया ''मधुराधिपते रखिलम मधुरम्''। सारा वातावरण मधुराधिपते रखिलम मधुरम से गुंज उठा।

श्रीवल्लभ श्रीनाथजी को उपर शिला पर पधरा कर ले गये और श्रीनाथजी के कोमल कोमल कपोलों को अपने श्रीहस्त से स्पर्श कर विनती की कि बावा आपने इतना अधिक श्रम क्यों किया। श्रीनाथजी ने कहा मुझे मन्दिर में पधराकर सेवा प्रारम्भ करो। इस प्रकार दोनों का प्रथम मिलन हुआ।

।। जय श्रीकृष्ण।।

"गुसाईंजी को उत्सव श्रीठाकुरजी ने करायो"

–श्रीरविराज ईश्वरचन्द्र सनाढ्य

भूतल पर श्रीवल्लभ का अवतार होना देवी जीवों पर श्रीजी बावा के परम अनुग्रह का प्रतीक है, पुष्टिजीवों में सगुणदासजी द्वारा रचित पद के भाव देखने को मिलते हैं यथा "जो श्रीवल्लभ प्रगट न होते। भारत भुषण विष्णु स्वरुप पथ, शृंगार शास्त्र सब रोते।।१।। सेवा काज प्रीती ब्रज जन की, बिन पायें कैसे जोते। सगुणदास प्रभु बिना, उर कपाट क्यो खोते (खुलना)।।२।। श्रीवल्लभ के गृह में जब श्रीविट्ठलनाथजी (गुसांईजी) का प्राकट्य हुआ तब पुष्टिमार्ग रूपी वृक्ष, जड़ रूप श्री श्रीजी बावा, इस वृक्ष का तना श्रीमद्वल्लभाचार्यजी तथा इस वृक्ष की शाखाऐं, पत्ते श्रीवल्लभ कुल और इस पुष्टिमार्ग रूपी वृक्ष के फलित रूप जो फल है उसे ही श्रीगुंसाईजी का स्वरूप माना जाता है। इन्हीं के द्वारा श्रीपुष्टि पुरूषोत्तम प्रभु श्रीजी बावा का सेवा प्रकार अधिक रसमय और दिव्यता पूर्ण बना।

एक समय जब श्रीगुंसाईजी श्री गोकुल में हते तब पौषवदी ६ को श्रीगुसांईजी को उत्सव आयो तब श्रीठाकुरजी सोचे कि गुसांईजी ने तो मेरो जन्मोत्सव या भूतल पर प्रगट कराय के विविध भांति राग, भोग, शृंगार करि लाड़ लड़ाये सो हम को भी उनको जन्मोत्सव को महत्व प्रकट करवो चाही। वा समय रामदासजी मुखिया तो श्रीगोवर्धनधर को शृंगार धरावते हते और कुंभनदासजी कीर्तन करत हते। तब प्रभु बोले जो रामदास काल कछु उत्सव करवो चाही तब रामदासजी कहे जो बावा काल कहा है जाको आपके उत्सव करावे को मनोरथ कर्‌यो। तब श्रीजी कहे काल गुसांईजी को जन्मोत्सव है उनने हमारे जन्मदिन को इतने भाव सो करे सो हम भी करेंगे। तब प्रभु बोले काल तो नवे वस्त्र कछु नयी सामग्री होय तो आनंद करे। रामदासजी कहे जो आप करो सो भली। वा समय श्रीठाकुरजी के पास मन्दिर में इतनो वैभव नहीं थो कि सब सेवा नयी सिद्ध करी जाय सके। तब रामदासजी ने श्रीकुंभनदासजी सो कही और भी सेवकों और वैष्णवों से भी कही। तब कुंभनदासजी अपने दो पात्र, दो पाड़ी ब्रजवासी को बैची के पाँच रूपया लायके मुखीयाजी को दिये और सेवकों ने कईने रूपया, कई ने आठ आना, कई दो रूपया दे के थोड़ो वैभव ईकट्ठे किये पन वैभव मे से या तो ठाकुरजी को वस्त्र सेवा पहोंचे या सामग्री सेवा। क्योंकि जब रामदासजी श्रीठाकुरजी आज्ञानुसार नवीं सामग्री कौनसी अरोगे चाही तब निकुंज नायक बोले जो मेरे गुसांईजी तो रसरूप है सो रसकी सामग्री कही (जलेबी)। तब जलेबी को मेदो चुन, घृत सदु पाण्डे के यहाँ सो पहोंचे और सामग्री में खाण्ड वा समय में २१ रूपया की आयी तो थोड़े रूपया बचे जा सो प्रभु को नये वस्त्र केसरी चाकदार, सुथन, ठाडे वस्त्र, मेघश्याम कुल्है जोड़ को शृंगार सिद्ध भये तब वस्त्र तो होय गये पर वैभव ना बच्यो और वस्त्र की किनारी नालगी और उत्सव के दिन की सुबह भी हो गई। श्रीजी के शृंगार को समय भी होय गयो तो समय ना रह्यो कि और रूपया चंदा करि के सेवा पहोची जाय और वहाँ के लोगन जो भीतर श्रीजी सम्मुख आये तब चिंतित मुद्रा में दिखे। प्रभु बोले जो रामदास

खुशी आनंद के दिन तु उदास चिंतित क्यो दिख रे हो। तब मुखियाजी बोले बावा श्रीवल्लभ की आज्ञानुसार आपको हमेशा किनारी वाले वस्त्र ही धरावे की कही है और आज के नये श्रृंगार, सामग्री तो सिद्ध भयी पन वस्त्र पर रूपया के अभाव में किनारी ना लग पायी ऐसो वस्त्र आपको कैसे धराऊं जा सो चिंतित हूँ।

तब गिरीराजधरण प्रभु बोले रामदास वल्लभ आज्ञा की तुमने टेक करी या सो मैं तो अधिक प्रसन्न भयो हूँ पन मैं तो भाव की सेवा ही स्वीकारू। सेवा में प्रभाव के उत्पति और भाव को अभाव होय तो ऐसी सेवा मैं स्वीकार ना करू और सेवा मे अभाव की उत्पत्ति और भाव में प्रभाव दिखे तो अभाव को अनदेखी करके आनंद मनाऊँ। तब मुखियाजी बोले गुसांईजी बरजेंगे। तब श्रीजी कहे मेरो नाम लेवे पे ना बरजेंगे। मुखियाजी आनंद चित्त सो श्रीनटवर नागर, श्रीवल्लभाधीश को सुन्दर श्रृंगार धराय के जलेबी सम्मुख करी। श्रीप्रभु सेवा भोग, कुंभनदासजी की राग, नये श्रृंगार वस्त्र को धारण करि आनंद करिके माने। श्रीगोकुल में भी श्रीलालन प्रभु को गुसांईजी उत्सव का श्रृंगार धरा जब श्रीगिरिराजजी पर पधारे तब रामदास मुखिया सो पुछी श्रीजी को कहा समय भयो। तब कहे जैराज राजभोग आये हैं। श्रीगुसांईजी अपरस करी निज मन्दिर में पधारे तब वहाँ जलेबी के टोकरा बहोत देखी के तथा उनने दैखी कि श्रीजी को मेरे जन्म दिन के दिन भी बिना किनारी के वस्त्र धराये हैं तब गुसांईजी बरजन लागे कि इतनी जलेबी के टोकरा धरे और वस्त्र बिन किनारी के। तब मुखियाजी बोले जैराज जैसी श्रीजी आज्ञाकरी सो हम करी मैने आपके बरजवे की और श्रीवल्लभ की टेक की बात भी श्रीप्रभु सो कही पन श्रीप्रभु बोले जब मेरे गुसांईजी को जन्मोत्सव है उनने मेरे जन्मदिन को महत्व भूतल पर किये सो हमें भी करवो चाही और श्रीमुख सो जलेबी आरोगवे की आज्ञा करी तब किये हैं। अपके बरजवे पर अपनो नाम बतावे को भी कहे। इतनी बात सुनवे पर प्रसन्नचित्त भये श्रीगुसांईजी रामदास सो पुरो प्रसंग जैसो भयो तैसो कहवे की करी और रामदासजी कहवे लागे। इतने में कुंभनदासजी भी आकर जैराज को दण्डवत् करी पास बैठे। तब मुखियाजी कहे जैराज चंदा जो करयो वामे पाँच रूपया कुंभनदासजी के है तब गुसांईजी बोले जो कुंभनदासजी आपके तो द्रव्य को संकोच है आप क्यो दिये। कुंभनदासजी बोले जैराज मेरे तो सब कछु आपके श्रीचरणाविंद है आपकी प्रसन्नता और ठाकुरजी के प्रसन्नता के निमित्त धर, बार, पति, पत्नी, बैटा, बैटी सब समर्पित होय गये ऐसे मे दो पाड़ा, दो पाड़ी और काम आई सो उत्तम बात है। तब गुसांईजी अपने श्री मुख सो आज्ञाकरी रामदास आज के तुम्हारे या प्रकार के सेवा सो मे अति प्रसन्न भयो हूँ या ते आज से जब भी मेरो जन्म दिवस आये तब प्रभु को वस्त्र पर किनारी के बिना वस्त्र तो आवे ठीक, पन हो सके जितनी प्रभु को जलेबी जरूर अरोगावनी।

''कलि मे एक बड़ो आधार।।
श्रीवल्लभ ग्रह श्रीविट्ठल प्रभु, आनलियो अवतार।।१।।
पूरण ब्रह्म श्रीकृष्ण विराजत, खेलत आँगन द्वार।।
'माधव' चरण शरण जे आये, ते उतरे भवपार।।२।।''

।। जय श्रीकृष्ण ।।

ब्रज विहार कवित्त छन्द

गतांक से आगे.........

–वैद्य श्रीजमनालाल 'जमनेश'

दोहा–56

रोटी पूरी ढ़ोकला, फुल्का लचकेदार।
और कई व्यंजन बने, सखड़ी में रसदार।।

कवित्त

रोटी हू ये अरोगत, न्यारे न्यारे स्वाद वारी,
मिस्सीरोटी प्यारी लगे, स्वाद में सुहावनी।
सादा रोटी सोंधवारी, फुल्का सुहावे न्यारे,
लाला पूड़ी अनौखी ये, लागे मन भावनी।।
फेनी, अरु ढोकला औ, चीलड़ा को स्वाद लेवें,
अरोगत लालन औ, जीमावत कामिनी।
कहे ''जमनेश'' बने, सामगरी भांति भांति,
बरनन नाय होवे, मनहू लुभावनी।।

दोहा–57

साग अनेको भोग में, भरे माट भरपूर।
सौंध सुहानी मन हरे, टेंटी औ अमचूर।।

कवित्त

सागहू अनेक विध, लालन हू अरोगत,
अरवी, रतालू, आलू, टींडस हू न्यारी है।
किकोड़ा औ मेथी हरि, लीलवा ये मेथी दाना,
खरबूजा, कचनार, तिरोही सुखारी है।।
बंगालीये अरवी औ, घीया, बेर, बड़ी प्यारी,
आंवला, शंकरकंद, कददू बलिहारी है।
कहे ''जमनेश'' चना, काचरा सुखवीचना,
ककड़ी औ पालक भाजी, भोग बलिहारी है।।

दोहा–58

दार अरोगत प्रेम सौं, भांति भांति प्रभु आप।
मिलमां, छुंकवां, स्वाद की मन हू जाये धाप।।

कवित्त

अरोगत दार प्रभु, कई भांति भांति वारी,
जाको स्वाद खावत ही, लगे मन भावनी।
चनाकी ये दार आखी, विविध मसालेवारी,
आखे मूंग, छिलका की, दार है सुहावनी।।
उरद की दार जामें, खटाई को स्वाद सौहें,
मूंग मोगर तुअर की, दार है लुभावनी।
कहे ''जमनेश'' दार, भेलवारी सोंधवारी,
जाको छौंक स्वाद लगे, मन हरसावनी।।

क्रमशः........

THE LIFE OF SHRI MAHAPRABHU VALLABHACHARYA (c. 1479-1531)

-SHYAM DAS

BRAJA LILAS

"Krishna enters this magical forest of Vrindavan and awakens the divinities who reside there. He accomplishes this through the call of His flute. He has opened the gates of love and the blessed women of Braja who are swept away in a current of bhava, play with Him. This takes place very close to their homes here in Vrindavan. The lakes of Braja, the Yamuna river and the adjoining hillsides are all abodes of divine dalliance. Krishna is ready to love and prepares others. Shri Krishna is Love's personified form. The Braja Gopis nourish that love and inspire it to arise."

Shri Vallabhacharya was not only the perfect witness to Krishna's lila, but was also the Lord of speech. His words not only taught experience, but created it as well. He then continued to reveal the mysteries of Vrindavan…

"In order to awaken divine attachment, Hari enters Vrindavan playing His flute. The Gopis sang about the song of His flute. Whoever is attracted to His attributes ends up attached to Him."

The souls Shri Vallabhacharya accepted became the beloveds of the Lord of the Gopis. He gave his eligible followers the direct experience of Shri Krishna and brought the divine realm of Vrindavan to this earth for them. He taught them that the highest reward was not to return to God, but to have God return to the soul here in this world. Human birth was not the result of negative karmas, but a supreme opportunity to have enchanges with Shri Krishna in this world, in your very home. A way to dedicate everything and use it for Krishna's pleasure and then to subsist on His prasada. To wear offered cloth and live in a totally offered world is not only the key to rise above all forms of anxiety, but it is the Path to Presence. The search for the Beloved is a continual process. The Path of Grace is a fiery affair with revolving experiences of finding Him in the world and then in the heart.

Beloved Vallabh's speech was Brahmic in every direction. Shri Vallabhacharya did not see Vrindavan, the sacred lands of Shri Krishna's lilas as a pilgrimage land, but rather as Shri Krishna's divine abode appearing in the world. He urged his followers to serve Shri Krishna, for wherever one makes Shri Krishna's seva becomes Vrindavan. To experience Krishna with all of one's senses is the highest reward of human life. True liberation is to make yourself so spiritually attractive that Shri Krishna can't wait to find you! In the Path of Grace, exalted souls find Shri Krishna everywhere they look and there is a constant exchange.

(To be Continued................)

।। जय श्रीकृष्ण ।।

पुष्टिमार्ग के वैष्णव वृन्द को महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैत एवं पुष्टिमार्गीय सेवा–पद्धति से परिचित कराने के साथ ही सेव्य प्रभु श्रीनाथजी जो श्रीकृष्ण के साक्षात् बालस्वरुप है, के प्रति स्नेह, सेवा एवं समर्पण भाव की अभिवृद्धि के लिए मन्दिर मण्डल विगत दस वर्षों से **''पुष्टिमार्ग त्रैमासिक पत्रिका''** का निरन्तर प्रकाशन करता आ रहा है। वैष्णवों से आग्रह है कि पुष्टिमार्ग–पत्रिका के सदस्य अवश्य बनें और पुष्टिभाव प्रसारार्थ अन्य लोगों को भी अवश्य सदस्य बनावें। इस हेतु कृपया सदस्यता फार्म भर कर शीघ्र भिजावें।

सदस्यता फार्म

पुष्टिमार्ग त्रैमासिक पत्रिका

प्रकाशक :– मुख्य निष्पादन अधिकारी नाथद्वारा मन्दिर मण्डल नाथद्वारा, पिन कोड– 313301

फोन : 02953–232482, फेक्स : 02953–232482, E-mail <shrinathdwar@bsnl.in>

ICICI Bank A/C No. 004501014021 बड़ौदा बैंक A/C No. 10300100000318

www.shreenathjee.com www. nathdwara. in

सदस्यता शुल्क	वार्षिक	पांच वर्षिय	आजीवन
भारत में	Rs. 60	Rs. 300	Rs. 800
विदेशों में	US$ 12	US$ 60	US$ 160

मुख्य निष्पादन अधिकारी
मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा, पिन– 313301

मैं/मैसर्स पुष्टिमार्ग त्रैमासिक पत्रिका की वार्षिक/पांच वर्षिय/आजीवन सदस्यता माह — — — — — — — वर्ष — — — — — — — — — से लेना चाहता/चाहती हूं। इस हेतु राशि — — — — — — — — — — — — — — — — का एम. ओ./एम. टी./डी. डी. नं. — — — — — (नाथद्वारा में देय) संलग्न कर प्रेषित है। (कृपया एम. ओ./एम. टी./डी. डी./या ICICI /BOB बैंक खाते में जमा कराई राशि संग ''पुष्टिमार्ग पत्रिका हेतु'' का उल्लेख कर स्लिप भिजावें)।

(डी.डी., बैंक चैक आदि मुख्य निष्पादन अधिकारी, मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा के नाम बनवावें।)

आवेदक के हस्ताक्षर

आवेदक का नाम —

पता —

जिला — — — — — — — — — राज्य — — — — — — — पिन कोड — — — —

फोन — — — — — — — — — ई–मेल — — — — — — — — —

पत्र, आलेख एवं सदस्यता भिजाने हेतु पता–
संपादक :–पुष्टिमार्ग त्रैमासिक पत्रिका,
(दयाशंकर पालीवाल, पुष्टि प्रसार अधिकारी, 09829755702)
लोधाघाटी, नाथद्वारा पिन–313301, जिला– राजसमन्द, (राज.)

Shrinathji Temple Board, Nathdwara has been publishing "Pushti Marg" Quarterly Magazine for last ten years to propagate and expand the, philosophical Doctrine of Shudhadwet and system of Pushti Marg sect propounded by Maha prabhu Shrimad Vallabhacharyaji.

All the devoted Vaishnavas are beseeched to be the members of and serve the Pushti Marg by making others to do the same.

MEMBER SHIP FORM

PUSTIMARG QUARTERLY MAGAZINE

Publisher :- Chief Executive Officer, Temple Board, Nathdwara-Pin-313301

Phone : 02953-232482, Fax-02953-232482, E-mail <shrinathdwar@bsnl.in>

ICICI Bank A/C No. 004501014021 **Bank of Baroda A/C No. 10300100000318**

www.shreenathjee.com **www. nathdwara. in**

Member ship Fee	Annual	Five Years	Life time
India	Rs. 60	Rs. 300	Rs. 800
Abroad	US$ 12	US$ 60	US$ 160

Chief Executive Officer

Temple Board Nathdwara-313301

I/Messers want to be the member of Pushti Marg Quarterly Magazine for one/Five Years/Life time from the month...............year. For this M.O./M.T./D.D. (Payable at Nathdwara) No. .... is enclosed here with. (please endorse the referance "For Pushtimarg Patrika" while sending M.O./M.T./D.D./ or ICICI/BOB Bank slip.)

(D.D./Bank Order Should be on the name of C.E.O. Temple Board. Nathdwara)

Signature of the Applicant

Name of the Applicant..

Adress...

...

District..............................State......................Pin.............

Phone...............................E-mail......................................

Adress for Sending letters, Articals and Member ship:-

EDITOR :- Pushti Marg Quarterly Magazine
(D. S. Paliwal, Pusti Extension Officer, 09829755702)
Lodha Ghati, NATHDWARA, Dist. Rajsamand, Rajasthan. Pin-313301